UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180340

UNIVERSAL
LIBRARY

पूर्व की ओर

(ऐतिहासिक नाटक)

वृन्दावनलाल वर्मा, एडवोकेट

(लेखक—झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, कचनार, मुसाहिबजू,
मृगनयनी, विराटा की पद्मिनी, अचल मेरा कोई,
टूटे काँटे, गढ़ कुंडार, कुण्डली-चक्र आदि)

प्रथम संस्करण

मयूर-प्रकाशन
झाँसी।

मूल्य २)

प्रकाशक:-
सत्यदेव वर्मा बी. ए, एल-एल. बी.,
मयूर-प्रकाशन, झांसी ।

प्रथमावृत्ति १९५०

अनुवाद इत्यादि के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं ।

मूल्य ७।) रुपया

मुद्रक—
द्वारिकाप्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश'
स्वाधीन प्रेस, झांसी ।

परिचय

श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक (History of Hindu Medaeval India) में लिखा है कि हिन्दुओं ने बड़े बड़े जल-यानों का बनाना यूनानियों से सीखा जब वे कलिङ्ग और आन्ध्र में फैल गये। यह सच है कि यूनानी समुद्रयात्रा करते थे, पोत-निर्माण शिल्प के जानकार थे और कलिङ्ग तथा आन्ध्र में जा बिखरे थे; परन्तु उनका इन प्रदेशों में राज्य भी हो गया था और उन्होंने हिन्दुओं को बड़े बड़े जल-यानों का बनाना सिखलाया यह सच नहीं है।

पहले भ्रम का निवारण श्री काशीप्रसाद जायसवाल ने अपने विख्यात ग्रन्थ History of India from 150 A D to 350 A.D. में बड़ी विद्वत्ता के साथ किया है। यहां वह हमारा प्रसङ्ग नहीं है। श्री वैद्य ने अपनी उक्त सम्मति का आधार यूनानियों के कलिङ्ग और आन्ध्र में राज्य करने और फैलने को माना है। उस सम्मति के लिये और कोई आधार नहीं है। यूनानी जब इन समुद्रतट-वर्ती प्रदेशों में फैले, तब शताब्दियों पहले, हिन्दू बहुत बड़ी बड़ी और लम्बी समुद्र यात्रायें कर चुके थे। ये यात्रायें महायानों द्वारा की गई थीं जो बहुत दृढ़ और लम्बे चौड़े तथा ऊँचे बनाये जाते थे। उस युग की बात है जब यूनानी कलिङ्ग और आन्ध्र में इधर उधर बिखरे भी न थे—कदाचित् भारत में उनका प्रवेश भी नहीं हुआ था। वास्तव में श्री चि० वैद्य का मत डबल्यू० डबल्यू० हन्टर के भ्रमपूर्ण निष्कर्ष से उद्भूत किया गया है। यूरोपियन पुरातत्त्व शोधकों के अन्तर्मन में एक विश्वास जमा रहा है कि संसार में जो कुछ भी सुन्दर तथा महान है उस सब का मूल स्रोत यूनान और रोम है। इस पूर्वाग्रह के कारण उनके शोध में कभी कभी भ्रम भर जाता है। समुद्र यात्राओं और यानों का वर्णन

ऋग्वेद में आया है। रामायण में तो उन बड़े द्वीपों तक का वर्णन है जहां हिन्दू यात्री व्यापार इत्यादि के लिये निस्सन्देह जाते रहे होंगे। सुग्रीव ने वानरों को उन उन द्वीपों के नाम गिनाये थे जहां सीता के मिलने की आशा की जा रही थी —यवद्वीप (जावा), सुवर्ण (सुमात्रा) लोहितसागर (लालसमुद्र) में भी ढूंढ़ खोज करने का सुझाव सुग्रीव ने दिया था। महाभारत के सभापर्व में समुद्र यात्रा का वर्णन आया है। सूत्रों में प्रचुर मात्रा में—बौधायन धर्म सूत्र में ब्राह्मणों के लिये समुद्र यात्रा वर्जित की गई है (बौ० ध० सू० २–२–२), परन्तु बतलाया गया है (१–२–४) कि आर्य यात्रा करते हैं। मनुस्मृति (३–१–५८) में निर्धार है कि जिस ब्राह्मण ने समुद्र यात्रा की हो वह श्राद्ध में बुलाने योग्य नहीं है ! वर्णाश्रम की कठोरता बढ़ जाने पर यह निर्धार हुआ होगा। परन्तु अब्राह्मणों के लिये कोई निषेध नहीं था। चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में बड़े बड़े जल यानों का एक अलग विभाग था; कौटल्य के अर्थशास्त्र में एक पूरा प्रकरण इस विषय पर है। पाटलि-पुत्र स्थित यूनानी राजदूत मेगस्थनीज़ ने भी वर्णन किया है जो कौटल्य के अर्थशास्त्र के विवरण से सर्वथा संगत है। समुद्र यात्रा इतनी बढ़ गई थी और आंधी प्रभञ्जनों के कारण इतने पोत डूब जाते थे कि याज्ञवल्क स्मृति में समुद्र को 'प्राणधन विनाश-शंका स्थान' कहा है। रत्नों और स्वर्ण, ऊन और पशुओं का व्यवसाय इतना बढ़ गया था कि प्राणधन विनाश की शंका की वृद्धि के साथ साथ हिन्दुओं का साहस भी बढ़ता चला गया। तब कुड़कुड़ाकर स्मृतिकार ने नियम बनाया कि जहाज़ चलाने वाले के दोष से प्राण और धन की जो हानि होगी उसका दायित्व संचालक के सिर रहेगा, यदि दैवी दुर्घटना के कारण हानि हुई तो दूसरी बात। यह उस युग की बात है जब यूना-नियों का विस्तार हुआ ही नहीं था।

लोग अपने साथ रत्न परीक्षकों को ले जाते थे। कथासरितसागर में एक समुद्र यात्री का किसी प्रसिद्ध चित्रकार को अपने साथ ले जाने

की कथा कही गई है। कथासरितसागर ईस्वी सन् के बहुत पहले लिखी जा चुकी थी, और यूनानियों का कलिङ्ग में विस्तार कई शताब्दियों पीछे हुआ।

महायान बहुत लम्बे चौड़े और ऊँचे बनाये जाते थे—दो दो तीन तीन खण्डों वाले तक। ताम्रलिप्ति (तामलूक, अब पूर्व बंगाल में) से महायान १२ दिन में लंका पहुँच जाता था। बौद्ध ग्रन्थों में बड़ी बड़ी समुद्र यात्राओं का वर्णन आया है। एक यान में तो सहस्रों मन लकड़ी के अतिरिक्त तीन सौ व्यापारियों के जाने की भी बात कही गई है—'अंगुत्तरनिकाय'। इसी में बतलाया है कि कभी कभी लगातार छः महीने तक समुद्र यात्रा होती थी! स्थल का पता लगाने के लिये यान पर पिंजड़ों में कउओं को रख लेते थे जो भूमि की खोज के लिये उड़ाये जाते थे। जातक ग्रन्थों में ८०० ई० पू० से २०० ई० पू० तक के समुद्र-यात्रा-वर्णन मिलते हैं। बवेरू जातक में एक व्यापारी की कथा आई है जो बाबुल (बेबीलन) में मोरों को बेचने के लिये यात्रा किया करता था। वलहास्स जातक में पाँच सौ व्यापारियों के डूबते डूबते बच जाने की कथा आई है। सुप्पारक जातक में सात सौ व्यापारियों ने एक बड़ी भयंकर यात्रा की थी जिसका महानाविक अन्धा था! महाजनक जातक में एक राजकुमार भागलपुर से सुवर्ण (सौम्य, सुमात्रा) की यात्रा के लिये गया और यान के साथ डूब गया। शङ्ख जातक में काशी के एक लोभी ब्राह्मण की समुद्र यात्रा का वर्णन आया है।

काम्बोज (कम्बोडिया और स्याम) चम्पा (अनाम और स्याम) तथा मलय और सुमात्रा को भारतीय बहुत प्राचीन काल से जाया आया करते थे। ईसा की कुछ शताब्दियों पूर्व उन्होंने वहां बसना आरम्भ कर दिया था और भारतीय संस्कृति का प्रस्तार। चम्पा में तीसरी शताब्दि के कुछ शिलालेख शुद्ध संस्कृत में मिले हैं। यह बात

तब की है जब हिन्दुओं ने चम्पा में अपने राज्य की स्थापना भी कर ली थी।

यवद्वीप और बाली में ये लोग पहुँचे और वारुण (बोर्नियो) में भी। भारतीय संस्कृति, शव और अल्पतः बौद्ध धर्म का प्रचार इन सब द्वीपों में द्रुतगति से हुआ। चीनी यात्री फाहियान (४०५–४११ ई०) जब इन द्वीपों में गया तब उसको बौद्ध धर्म तो अति क्षीण अवस्था में दिखलाई पड़ा परन्तु शव इत्यादि ब्राह्मण धर्म बहुत उन्नत और व्यापक अवस्था में मिले। बोरबन्दर में ईसा की सातवीं शताब्दि का बना हुआ बौद्ध मन्दिर संसार का अब भी एक आश्चर्य है। यह मन्दिर छः सौ फीट लम्बा और छः सौ फीट चौड़ा है। बाली और अंशतः स्याम तथा बोर्नियो में अब भी हिन्दू हैं और जावा की पुरानी भाषा 'क वी' सस्कृत और वहां की आदिम भाषा का मिश्रण है। भारतियों ने इन द्वीपों में जाकर परपीड़न नहीं किया। प्रत्युत इन द्वीपों को धर्म, संस्कृति और कला का प्रदान किया और उनमें घुल मिल गये। जावा और सुमात्रा में अधिकांश मुसलमान है परन्तु रामायण और महाभारत के राम लक्ष्मण तथा अर्जुन भीम को वे अब भी अपना ही मानते हैं, अपने को उनकी सन्तान समझते हैं और उनकी परम्पराओं और कथाओं को अपने जीवन का अङ्ग बनाकर खेलते है।

और भारत ने तो इनको ऐसा अपनाया कि नवद्वीपों में अपने नाम के साथ इन सबकी*गणना की: भारत, ताम्रपर्णि (सिंहल, लङ्का) इन्द्रद्वीप (बर्मा) कसेरू (मलयइत्यादि) नागद्वीप (नीकोबार) गभस्तिमान (पूर्वीय द्वीप समूह) सौम्य (सुमात्रा) वारुण (बोर्नियो) गन्धर्व (दूर पूर्व

---

* इन्द्रद्वीप कसेरुश्च ताम्रपर्णी गभस्तिमान,
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुण ।
अयंतु नवमस्तेषां द्वीपाः सागरसंवृतः ।

—'वायु-पुराण'

का एक द्वीप–समूह), इन नवों द्वीपों के निवासी भारतीप्रजा कहलाने लगे थे। भारत के साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। समुद्रगुप्त के काल में तो ये सब एक ही साम्राज्य के अन्तर्गत समझे जाते थे।

भारत के पल्लव कालीन युग में इन द्वीपों के साथ सम्पर्क बहुत घनिष्ठ हो गया था। सम्भव है कि इसी युग में चम्पा, वारुण और यव द्वीपों में फिलीपाइन द्वीप समूह होते हुये हिन्दू मध्य और दक्षिण एमेरिका गये हों। मध्य एमेरिका, मक्सिको पेरू इत्यादि में भारतीय सभ्यता और धर्म के चिन्ह अब भी पाये जाते हैं। पल्लवकाल दक्षिण भारत का गौरवमय युग है।

पल्लवों के सम्बन्ध में भी यूरोपियन इतिहास लेखकों ने एक महा भ्रम की कल्पना की थी। विन्सण्ट स्मिथ ने अपने 'प्राचीन भारत के इतिहास' में लिखा है कि १५० इस्वी से ३५० ईस्वी तक का भारतीय युग अन्धकार का युग है। डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने बड़ी विद्वत्ता और योग्यता के साथ इस भ्रम का सदा के लिये खण्डन कर दिया है। स्मिथ ने अपने इसी भ्रम के आधार पर पल्लवों के पूर्वजों की कल्पना की है। स्मिथ का कहना है कि इस अन्धकार युग में अनेक विदेशी भारत में घुस आये, आगे बढे पनपे और उन्होंने अपने राज्य स्थापित किये। पल्लव और पह्लव मिलते जुलते शब्द हैं, इसलिये हो न न हो ईरान से पहलवी (पह्लव) आये और उन्होंने दक्षिण भारत में हिन्दू आवरणों से अपने को ढक कर, धान्यकटक, वङ्गी और कान्ची में राज्य स्थापित किया। जब यूरोपियन इतिहास लेखकों को किसी भारतीय वृत्त का मूल भारत में नहीं दिखलाई पड़ता तब वे झटपट उस वृत्त का मूल किसी विदेश में ढूंढ निकालते हैं। और फिर पल्लव और पह्लव शब्द की ध्वनि में अन्तर कितना है! इसलिये पह्लव पल्लव हो गये !! उस अन्धकार युग में आ घुसे, हिन्दू बन गये और राज्य कर उठे !!! परन्तु जब डाक्टर जायसवाल ने भ्रम के उस आधार को ही समाप्त कर दिया, तब अधिक अनुसन्धान हुआ।

पूर्वीय बोर्नियो में डच विद्वान डाक्टर वोगल को तीसरी शताब्दि का एक शिला लेख मिला जिसको कुछ लोग चौथी शताब्दि का भी मानते हैं। लेख प्राकृत में है। लिपि उसकी वही है जो दक्षिण भारत में पल्लवों के शिलालेखों और ताम्र-पत्रों की है। शिलालेख मूलवर्म्मा नाम के राजा का खुदवाया हुआ है। इस शिलालेख से पता लगा है कि मूलवर्म्मा के पिता का नाम अश्ववर्म्मा और पितामह का नाम कुण्डुङ्ग था। शिलालेख से प्रकट है कि मूलवर्म्मा ने 'बहु सुवर्णक' नाम का यज्ञ किया था और ब्राह्मणों को अनेक दान दिए थे*। जितने प्राचीन शिलालेख बोर्नियो और कम्बोडिया में मिले हैं उनकी भाषा प्राकृत या संस्कृत है और लिपि पल्लवी। इन्हीं भाषाओं का प्रयोग वाकाटकों ने भारत में किया है; उस काल के भी कुछ पूर्व जिसको स्मिथ ने ईरान से पह्लवों के घुस पड़ने का भारतीय अन्धकार युग बतलाया है।

पल्लवों की लिपि नाग लिपि है, देवनागरी का प्राथमिक रूप। दक्षिण भारत के अन्य राजाओं की लिपियाँ जो शिलालेखों और दान-पत्रों में मिली हैं पल्लव लिपि से सर्वथा भिन्न हैं। यह लिपि वाकाटकों और नागों (१५०—३५० ई०) ने प्रयुक्त की है। पल्लवों की वंशावलि और उनके द्वारा इस लिपि तथा संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का शिलालेखों तथा दानपत्रों में उपयोग निर्विवाद रूप में निश्चित कर देता है कि पल्लव वाकाटक शुद्धआर्य—या हिन्दू—थे न कि ईरान से घुस पड़ने वाले पह्लव।

पल्लव अपनी वंशावलि ब्रह्मा से आरम्भ करते हैं जैसी कि यहां की परम्परा है। ब्रम्हा से अंगिरस, बृहस्पति, शंयु, भरद्वाज, द्रोण,

---

* श्री मूलवर्म्मा राजेन्द्रो यष्ट्वा बहुसुवर्णकम्,
तस्य यज्ञस्य यूपोऽयम द्विजेन्द्रैस्सम्प्रकल्पितैः।
—बोर्नियो का शिलालेख

अश्वत्थामा, और 'आठवां अश्वत्थामा तथा एक अप्सरा' से पल्लव। अप्सरा ने अपने पुत्र को कोमल पल्लवों में रखकर पाला था, इसलिये नाम पड़ा पल्लव।

जब वाकाटक उत्तर भारत से भारत भर का शासन कर रहे थे (१५०–३५० ई०) तब उन्हीं के वंशज, नर्मदा और गोदावरी के दक्षिण में उनके राज्यपाल या महादण्ड–नायक थे। वाकाटकों का गोत्र भारद्वाज था और पल्लवों का भी। दक्षिण के वीरकूर्च नामक एक भारद्वाज गोत्रीय राज्यपाल को मध्यदेश के क्षत्रिय नागराजा की कन्या ब्याही गई। उसने राजनैतिक तपस्या की और भारद्वाज ब्राह्मण से भारद्वाज क्षत्रिय हो गया। उसके वंशज अपने नाम के अन्त में वर्म्मा शब्द का उपयोग करने लगे। पल्लव राज्यपालों के वंश में वीरकूर्च ग्यारहवां था। यह समय उत्तर भारत में वाकाटक साम्राज्य का अपेक्षाकृत क्षीणता का था और दक्षिण के पल्लव राज्यपाल की श्रीवृद्धि का। राज्यपाल महाराज भी कहलाते थे, परन्तु साम्राट पद से अभिहित न थे। दक्षिण के पल्लव राज्यपाल अपनी उत्तरोत्तर श्रीवृद्धि के विकास क्रम में धर्म महाराजाधिराज कहलाने लगे, परन्तु उन्होंने अपने को सम्राट कभी नहीं कहा। कदाचित् अपने उत्तर भारतीय पूर्वजों की परम्परा का मान बनाये रखने के लिये उन्होंने ऐसा किया हो।

पल्लव काल (लगभग २०० ई० से ११०० ई०) में दक्षिण भारत में कला और संस्कृति का जो विकास हुआ और साधारण जन को अपनी अभिव्यक्ति के जो अवसर मिले वे महान हैं। इन पल्लवों के काल में दक्षिण भारत का पूर्वीय द्वीपों के साथ, समुद्र यात्रा द्वारा, सम्पर्क बहुत घनिष्ट हो गया। उत्तर भारत का सम्पर्क इन द्वीपों के साथ गंगावर्ती नौकाश्रय ताम्रलिप्ति से था, परन्तु उस मात्रा में घनिष्ट न था।

कहा जाता है कि दक्षिण भारत में आर्यों का प्रवेश ईसा से लगभग एक सहस्र वर्ष पहले हो चुका था। विन्ध्याचल को नतमस्तक छोड़ कर दक्षिण में अगस्त्य ऋषि के जाने की गाथा इससे अधिक पुरानी या इसी का प्रतीक होगी। फिर अगस्त्य ऋषि उत्तर लौटकर नहीं आये और विन्ध्याचल उनके लौटने की प्रतीक्षा में अब भी ज्यों का त्यों नतमस्तक खड़ा है। पूर्वीय द्वीपों की ओर अगस्त्य ऋषि की समुद्र यात्राओं का वर्णन गाथाओं में है। पूर्वीय द्वीपों के असंख्य निवासी अपने को इन्हीं अगस्त्य और पीछे आने वाले अन्य अगस्त्यों की सन्तान मानते आये हैं। अगस्त्य ने एक चुल्लू में सारे समुद्र को पीकर सुखा डाला था। सीधी भाषा में इसका अर्थ है अगस्त्य ऋषि और उनके सन्तानों या उत्तराधिकारियों का निर्बाध समुद्र यात्रायें करना। ये अधिकांश यात्रायें दक्षिण भारत से ही हुई हैं जहां पहले अगस्त्य विन्ध्याचल को झुकाकर गये थे। इनके उपरान्त पूर्वीय द्वीपों की समुद्र यात्राओं का श्रेय पल्लवों को मिलना चाहिये।

वारुण द्वीप के शिलालेख वाले मूलवर्म्मा के पिता अश्ववर्म्मा और पितामह कुण्डुङ्ग के पल्लव होने में कोई सन्देह नहीं है। कान्ची और धान्यकटक के पल्लव भी 'वर्म्मा' में अपने नाम का अन्त करते थे। उनकी लिपि और भाषा का कुछ वर्णन ऊपर आ चुका है।

वारकूर्च का पुत्र शिवस्कन्दवर्म्मा था और शिवस्कन्दवर्म्मा का वीरवर्म्मा। वीरवर्म्मा का काल लगभग २९५ ई० माना जाता है। यही वीर-वर्म्मा इस नाटक का एक पात्र है। अश्ववर्म्मा के पिता कुण्डुङ्ग को मैंने वीरवर्म्मा का भाई माना है। वीरवर्म्मा के शासन-काल में चोल-नरेश ने पल्लवों से कान्ची को ले लिया था।

वीरवर्म्मा का भतीजा अश्वतुङ्ग या अश्ववर्म्मा इस नाटक का नायक है।

नाटक की कथा वस्तु का निर्माण ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर किया गया है। ये घटनायें एक ही देश काल में घटित नहीं हुई हैं; घटनायें तीसरी शताब्दि और उसके कुछ समय पूर्व की हैं। उनको एक देशकाल में सँजो दिया गया है।

मगध के एक राजकुमार को दुष्टकर्मों के कारण सात सौ साथियों सहित देश निष्कासन का दण्ड दिया गया था। राजकुमार और उसके साथी एक महा-यान पर बैठकर किसी दूर द्वीप में चले गये, फिर उनका कोई पता नहीं चला।

वारुण और चम्पा की एक ऐतिहासिक गाथा है कि भारत से एक राजकुमार अनेक साथी लेकर महायान से पहुँचा। जहाँ पहुँचा, वहाँ एक राजकुमारी राज्य करती थी। अपने देश की प्रथा के अनुसार राजकुमारी निपट नङ्गी रहती थी और उसके सब प्रजाजन भी। छोटे छोटे सेयानो मे सेना लेकर राजकुमार से युद्ध करने के लिये आई। युद्ध में हार गई। राजकुमार ने उसको ग्रहण किया और उसको तथा उसकी प्रजा को वस्त्रों का पहिनना सिखलाया। यह कथा वारुण या चम्पा की न होकर नागद्वीप (नीकोबार) की सी जान पड़ती है। क्योंकि अण्डमान और नीकोबार के आदिवासी अट्ठारहवीं उन्नीसवीं शताब्दि तक नंगे रहते थे और धातुओं के उपयोग से अपरिचित थे। राजारानी उनके यहाँ कोई होता न था। वे आस्ट्रेलिया के आदिम निवासियों के समान टोटम-समूहों में विभक्त थे और वैसा ही उनका रहन-सहन था। संभव है उस गाथा की राजकुमारी कोई भारतीय नारी हो जो बाल्यकाल में अपने निर्वासित कुटुम्बियों के साथ उस द्वीप मे पहुँच गई हो और अन्त में, अकेली रह जाने पर, आदिम निवासियों के समान जीवन यापन करने लगी हो। नाटक की धारा उसी भारतीय कुमारी का रूपान्तर है।

इन द्वीपो के आदिम निवासियों के सम्बन्ध में विलियम जे० फील्डिंग ने अपनी पुस्तक 'Strange Customs Of Courtship and Marriage' के पृष्ठ ५६ पर बतलाया है :—

'अभी अभी तक अन्डमान द्वीपों में प्रत्येक स्त्री अपने वर्ग के सारे पुरुषो की पत्नी बनी रहो है। यदि इस अधिकार का कोई भी विरोध करता तो उसको कठोर दण्ड दिया जाता था'

अन्डमान नीकोबार के आदिवासी अत्यन्त खर्वाकार होते थे। लम्बा से लम्बा मनुष्य चार फीट दस इन्च की ऊँचाई का और स्त्री तीन चार इन्च और भी कम! बाल काले घुँघराले, नाक चिपटी, रंग भौंरे का जैसा। आखेट के परम व्यसनी। अपरिचितों के साथ नितान्त बुरा व्यवहार करने वाले। इसका पर्याप्त कारण भी था: मलय के जलदस्यु इनको दास बनाने के लिये पकड़ ले जाते थे, इसलिये वे सभी परदेशियों के प्रति अति क्रूर हो गये। कोई भी बाहर वाला इनके द्वीप पर आया नहीं कि इन्होंने उसका नरमेध किया और खा गये। फिर मलय के जल दस्यु इन द्वीपों को दूर से ही प्रणाम करने लगे थे।

ये द्वीप वासी छोटी छोटी सी बात पर परस्पर युद्ध कर बैठते थे। आग बनाना नहीं जानते थे। अध जली लकड़ी लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते थे—दिन में भी। दो तक की गिनती तो सभी जानते थे, तीन और चार की गिनती जो जाने वह पंडित और पाँच तक जो गिन डाले वह तो महापंडित ही! नृत्य और गान हर्ष के प्रत्येक अवसर पर करते थे। विदा होते समय एक दूसरे का हाथ फूकते थे, मानो इस यन्त्र द्वारा कह रहे हों, तुमको साँप न काटे। विवाह की प्रथा विलक्षण थी। वधू को एक नई झोपड़ी में बिठला देते थे। वर बहुत लाज सङ्कोच प्रकट करता था, अनिच्छा प्रकट करता और जङ्गल को भाग जाता था। उसके मित्र पकड़ कर ले आते थे और वधू की गोदी में बिठला देते थे। बस हो गया ब्याह।

द्वीप की इन प्रथाओं में से कुछ का उपयोग नाटक में किया गया है

धारा, तूम्बी और जय के नाम छोड़कर शेष सब नाम इतिहास से लिये गये हैं। इतिहास में गजमद को मन्त्री बतलाया गया है, परन्तु मैंने उसको दूसरा रूप दिया है।

जब अश्वतुङ्ग—आगे का अश्ववर्म्मा—प्रतिष्ठान में जाली राजाज्ञा को लेकर पहुँचा, तब उसकी अवज्ञा वहां की नगर—पन्चायत ने की। अवज्ञा वाली बात ऐतिहासिक है। नगर पन्चायतों में इतना आत्म—बल और आत्म—

विश्वास था कि वे बड़े से बड़े राजा के भी धर्म और विधान के विरुद्ध आदेश की अवहेलना कर देती थीं। पञ्चायतों की यह परम्परा अंग्रेजी शासन के आरम्भ तक रही है।

दक्षिण भारत में अनेक शताब्दियों तक राजाओं का आदर्श 'सम्यक प्रजा पालन मात्राधिगत राज्य प्रयोजनस्य' रहा है। इनमें से कुछ तो अपने सभाभवन के द्वार पर बड़े बड़े अक्षरों में इस वाक्य को उत्कीर्ण कराये हुये थे। राज्य करने का प्रयोजन प्रजा का केवल ठीक ठीक पालन है, इस पुरातन सिद्धान्त को वे कार्यान्वित भी करते थे।

वारुण द्वीप नदियों, पहाड़ों, जगलों और उर्वरा भूमि का द्वीप है, जिसकी गणना पृथिवी के सबसे बड़े द्वीपों में तीसरी है। इसकी कदाचित् सबसे बड़ी नदी वारुणी (ब्रूनो) है। वारुणी, वारुण द्वीप के उत्तर पश्चिम में समुद्र से मिलती है। इसके किनारे वरुण नाम का नगर भी था जो आज का ब्रूनै है। वारुणी नदी के किनारे और वरुण नगर के निकट कुछ पुराने खंडहल अब भी हैं।

पूर्वीय वारुण में 'वप्रकेश्वर महादेव' का मन्दिर है जो पल्लव काल (अश्वघर्मा-मूलवर्म्मा) का बना जान पड़ता है। अश्ववर्म्मा और धारा कहीं इसी के आसपास अपने जीवन के लिये गौरव और सौन्दर्य का संग्रह किया करते होंगे।

पल्लवों के पूर्वज वाकाटक शैव थे। पल्लव भी शैव थे। उन्होंने कान्ची को काशी का पद-गौरव दिया जो आज भी अक्षुण्ण है। वाकाटकों की वास्तुपरम्परा में, प्रत्येक भवन और मन्दिर में, मकरतोरण, द्वारके एक पार्श्व पर गंगा और दूसरे पर यमुना, गंगा यमुना के नीचे घट, एक ओर नन्दी, दूसरी ओर चक्र, खजूरी खम्बे अनिवार्य रूप से मिलते हैं। पल्लव मन्दिरों और भवनों में भी ये ही चिन्ह पाये जाते हैं। वारुण (बोर्नियो) के वप्रकेश्वर महादेव के मन्दिर में भी पाये गये हैं। पूर्वीय द्वीपों में बौद्ध धर्म का प्रचार थोड़ा ही हो पाया, क्योंकि यहां के अधिकांश राजा और अभिजात शैव थे। इसके अतिरिक्त संभवतः, बौद्ध धर्म का प्रचार वैसे प्रबल

हाथों में न रहा, जैसे हाथों में लङ्का इत्यादि देशों में जाने वाले प्रचारकों के हाथों में रहा। पल्लवों के पहले उत्तराखण्ड को आर्यावर्त कहते थे, दक्षिण को भी आर्यावर्त कहने का प्रयत्न किया गया, परन्तु यह नाम व्यापक न हो सका। पल्लवों को इस बात का श्रेय है कि इन्होंने सम्पूर्ण देश को भारतवर्ष नाम व्यापक रूप से दिया। एक श्रेय उनको और है—भारत के बाहर रहने वाले भारतीयजनों को इन्हीं के युग से भारती सतति कहा जाने लगा।

पल्लवों की महानता आज भी हमको कुछ सिखा सकती है। उन्होंने श्रम को महत्व दिया। बारहवीं शताब्दि में दक्षिण भारत में 'वीर शैव' मत प्रकट हुआ जिसके प्रवर्त्तक ने 'जातपाँत' के अन्तरावान्तरों को व्यर्थ बतलाया, श्रम—कायक—को महत्ता और प्रतिष्ठा दी—इतनी कि कैलास उसी को प्राप्त हो सकता है जो श्रम करे, माँग माँगकर न खाये और सच्चरित्रता का जीवन बितावे। क्या आज भी श्रम को वह गौरव और मान प्राप्त है जिसके बीज पल्लवों ने बोये थे और जिसको पल्लवित तथा फलित इस मत ने किया! पल्लवों ने एक और महान कार्य किया—कला के लालित्य और जीवन के पराक्रम-गौरव का समन्वय।

दक्षिण के मन्दिरों की सुन्दरता, महानता और शिल्पकुशलता ऐसी है कि आश्चर्य होता है। वहां का 'भरतनाट्य (नृत्य प्रणाली) और संगीत इतना उन्नत है कि बिना संकोच के कहा जा सकता है कि इनकी परिपक्वता के पीछे शताब्दियों का इतिहास है। अवश्य ही पल्लवकाल में इनके विकास को बहुत स्फुरण मिला होगा।

तान्त्रिक बौद्धों का सम्प्रदाय श्रीपर्वत—नागार्जुनी कोंडा से चला जिसके द्वारा दक्षिण में ब्राह्मण और अब्राह्मण का दुस्सह अन्तर कम हुआ। कहते हैं कि भगवान बुद्ध ने तन्त्र-शास्त्र का उपदेश पहलेपहल यहीं दिया था। नागार्जुनी कोंडा के निकट ही महाचैत्य के विशाल भग्नावशेष हैं। किसी समय यह अति भव्य रहा होगा। बौद्धों का

चैत्यवादी सम्प्रदाय यहीं से चला। काञ्ची तो है, परन्तु धान्यकटक के खंडहरों पर अब धारनकोट नाम का गाव खड़ा हो गया है।

इस नाटक में पुरातन की पूजाअर्चा कितनी और कैसी है और वर्तमान के लिये उसमें क्या है, इसके बतलाने का इस समय न तो मुझको मोह है और न अधिकार। प्रश्न के रूप में ही कुछ कह सकता हूं: क्या अपने ऊपर हँसने वाला कठिनाइयों को सहज ही पार नहीं कर लेता? क्या मनोविज्ञान में इस विचार को विशेष स्थान नहीं मिलना चाहिये? पाठक और अभिनय करने वाले निर्णय करेंगे।

प्राचीन भारतियों की समुद्र यात्राओं के प्रसङ्ग पर हिन्दी में नाटक और उपन्यास का अभाव है। सम्भव है यह नाटक उस अभाव की कुछ पूर्ति करे। खेलने वालों को रंगमञ्च सृजन में कुछ कठिनाई अनुभव हो सकती है। परन्तु हरएक युग में रङ्गमञ्च के सुधारने सँवारने की साध तो अभिनयकर्ताओं में रही ही है। मुझे उसी साध का सहारा है।

झाँसी
२४–८–५०

वृन्दावनलाल वर्मा

नाटक के पात्र

वीरवर्म्मा—धान्यकटक का राजा—उपाधि पल्लवेन्द्र।

अश्वतुंग—वीरवर्म्मा का भतीजा।

गजमद—अश्वतुङ्ग का साथी, विदूषक।

जय स्थविर—नागार्जुनी कोण्डा (श्रीपर्वत) के एक विहार का तान्त्रिक बौद्ध भिक्षु।

चन्द्रस्वामी—श्रेष्ठी और व्यापारी, प्रतिष्ठान प्रदेश का निवासी और जलयान का स्वामी।

अवन्तिसेन महानाविक—जलपोत का सञ्चालक।

कन्दर्पकेतु—धान्यकटक का एक धनाढ्य व्यापारी।

जिष्णु—मगध का एक निर्वासित नागरिक जो नागद्वीप में रहने लगा था।

धारा—जिष्णु की पुत्री।

तूम्बी—नाग-द्वीप की स्त्री।

गौतमी—कन्दर्पकेतु की पुत्री।

मन्त्री, भट्टनागर, दंडनायक, नाविक, माझी, द्वारपाल, योद्धा, नागद्वीप के निवासी, वारुणद्वीप के निवासी, नागद्वीप वासिनी स्त्रियां इत्यादि।

स्थान—धान्यकटक, नागार्जुनी कोंडा, प्रतिष्ठान और नागद्वीप तथा वारुण द्वीप।

समय—तीसरी शताब्दि के अन्त के लगभग।

पूर्व की ओर

पहला अंक

पहला दृश्य

[स्थान—श्री पर्वत (नागार्जुनी कोंडा) के लिये वनपथ। नागार्जुनी कोंडा यहां से अभी थोड़ी दूर है। कन्दर्पकेतु अपनी पुत्री गौतमी के साथ आ रहा है। कन्दर्पकेतु की आयु लगभग पचास वर्ष की है। उसके गले में स्वर्ण की माला है। धोती, कुर्तक और उष्णीश पहिने है। गौतमी की आयु सत्रह अट्ठारह वर्ष की है। वह मातृ--हीना है। साधारण सुन्दरियों से अधिक सुन्दर है। गले में सोने के हार के अतिरिक्त और कोई अलंकार शरीर पर नहीं है। एक रंग की कन्चुकी और दूसरे रंग की साड़ी पहिने है। दोनों नंगे पैर हैं। इनके पीछे पीछे बोझ ढोने वाले कुछ श्रमिक हैं जो पीठ पर पोटलियां कसे हैं। समय—दिन]

गौतमी—मैं तो थक गई हूं पिताजी, कितनी दूर और है अब जयस्थविर का विहार ?

कन्दर्पकेतु—आधा कोस ही तो रह गया है। आगये, थोड़ासा ही और चलना है।

गौतमी—रथ से चले चलते तो अच्छा रहता।

कन्दर्पकेतु—महाचैत्य तीर्थ स्थान है और महाचैत्य का विहार भी तीर्थ के ही समान है। नंगे पांव तीर्थयात्रा करने से ही पुण्य की प्राप्ति होती है। रथपर यात्रा करने से पुण्य क्षीण हो जाता। कोस आध कोस ही तो पैदल चले हैं। उस गाँव तक तो रथ में ही आये थे।

गौतमी—यहां कुछ क्षण ठहर जाइये। कैसे सुन्दर वृक्ष, पक्षी और इधर उधर हँसते मुस्कराते दूर्वादल हैं ! जान पड़ता है जैसे पुण्य को बिखेर रहे हों।

(वे सब रुक जाते हैं। श्रमिक बैठ जाते हैं।)

कन्दर्पकेतु—विहार के जीवन में आत्मा के सौन्दर्य की ओर मन को लगाना पड़ता है। बाह्य सौन्दर्य वहां निरर्थक है। अन्तर्निहित सौन्दर्य की भाषा में बोलो, बेटी।

गौतमी—मैंने भी पढ़ा है पिताजी। वहाँ का जीवन जैसे सौन्दर्य वाला होगा; यहां बाहरी प्रकृति का सहज सरल लालित्य है। क्या विहार में इसके अवलोकन का निषेध है ?

कन्दर्पकेतु—नहीं तो बेटी। परन्तु उपसम्पदा लेने वाले को आत्मा की मञ्जुलता पर ध्यान को केन्द्रित करना पड़ता है। वहां के स्थविर और भिक्षु बतलायेंगे। वे जिस प्रकार के निग्रहों में रहते है उसी प्रकार तो रहना और बर्तना पड़ेगा।

गौतमी—आप समुद्र यात्रा कब करेंगे ?

कंदर्पकेतु—जैसे ही विहार के स्थविर ने तुम्हारा परीक्षण किया और उपसम्पदा के हेतु तुमको विहार में प्रवेश मिला, मैं धान्यकटक

चला जाऊँगा। वहां अपने बड़े यान और छोटे बड़े पोत व्यापार सामग्री भरने के लिये प्रस्तुत मिल जायँगे; सामग्री भरी और चल दिया।

गौतमी—समुद्र में पवन के तीव्र होने पर यान के पाल भर कर ऐसे फूल जाते होंगे जैसे तूम्बा! यान की गति बहुत द्रुत हो जाती होगी!!

कन्दर्पकेतु—कन्दुक की भांति भागता चला जाता है।

गौतमी—उस समय यात्रियों को कैसा लगता होगा?

कन्दर्पकेतु—तुम कृष्णा नदी में यान पर बैठी तो हो अनेक बार!

गौतमी—समुद्र यात्रा तो कभी नहीं की!

कन्दर्पकेतु—उपसम्पदा लेने के उपरान्त जब तुमको भिक्षुणी का पद प्राप्त हो जाय और विहार के भिक्षु धर्म-प्रचार के लिये देश देशान्तर जावें तब तुमको भी यात्रा करने के बहुत अवसर मिलेंगे।

गौतमी—वे कब निकलेंगे समुद्र यात्रा करने के लिये? कब?

कन्दर्पकेतु—सौम्य, कसेरु, यव, वारुण इत्यादि द्वीपों को मेरे यान आते जाते हैं, मैं ही इन द्वीपों में से किसी एक में बुला लूंगा। वहाँ तुम धर्म-प्रचार करना।

गौतमी—तो कब?

कन्दर्पकेतु—अभी तो तुमने उपसम्पदा ही नहीं ली है। ले लेने पर ही तो यह प्रश्न उठ सकेगा। भिक्षु कब पर्यटन के लिये निकलेंगे इसका निश्चय तो वे ही करेंगे।

गौतमी—अब तो आ ही चुकी हूं। कहीं आपके साथ पहले यात्रा कर आई होती तो कैसा अच्छा रहता!

कन्दर्पकेतु—यदि इस प्रकार का कोई मोह या विकार मन के किसी कोने में हो तो लौट पड़ना चाहिये। ऐसी स्थिति में उपसम्पदा का ग्रहण करना उचित नहीं होगा। (*दूसरी ओर मुँह फेरकर।*)

तुम्हारी माता तुम्हें छुटपन में ही छोड़कर स्वर्ग को सिधार गई। एक तो तुम्हारे लिये मुझको कोई अच्छा वर नहीं मिला, दूसरे तुम्हारी भावना और रुचि को धर्म की ओर देखकर, अपना सारा काम छोड़ कर, चला आया। अब जैसी तुम्हारी इच्छा हो।

गौतमी—नहीं पिताजी, मैंने वैसे ही कहा। जब घर से निकल पड़े तो लौटना कैसा? यहाँ चैत्य के दर्शन करेंगे, ऋषिनागार्जुन के पर्वत का भ्रमण करेंगे, विहार को देखेंगे, वहां उद्यान का प्रेक्षण,—

कन्दर्पकेतु—पर्वत का भ्रमण व्यर्थ होगा। वन उपवन, पर्वत, वृक्ष, नदी सरोवर, बाह्य प्रकृति, सब स्थानों में व्यापक रूप से एक सी होती है। भूलना नहीं चाहिये कि तुम भ्रमण मात्र के लिये नहीं निकली हो, प्रत्युत भ्रमण शील मन को एकाग्र करने हेतु—

गौतमी—ऐसा ही है, पिताजी, ऐसा ही है। आपने चार द्वीपों के अभी अभी नाम गिनाये थे। इनके अतिरिक्त और भी कोई बड़े देश हैं जहां भारती-जन रहते हों?

कन्दर्पकेतु—हां हां चम्पा एक और बड़ा भूखण्ड है। वहां तो भारतीयों का राज्य भी है।

गौतमी—चम्पा में भी बुद्ध, धर्म और संघ की मान्यता है?

कन्दर्पकेतु—अल्प मात्रा में ही है। तुम धर्म और विश्वास में दृढ़ होजाओ। मेरे ही यानों के द्वारा यात्रा करना। मैं तब तक इतने स्वर्ण का संग्रह करूँगा कि स्थान स्थान पर मठ और विहार बनवा दूँगा। वारुणद्वीप अपने कार्य का केन्द्र रहेगा।

गौतमी—वारुणद्वीप क्या इन सबमें बड़ा है? कैसा है वह द्वीप?

कन्दर्पकेतु—लगभग तीनसौ कोस लम्बा और इतने ही कोस चौड़ा है। असंख्य बड़ी छोटी नदियां, बड़े-बड़े उत्तुङ्ग पर्वत, विस्तृत सघन वन जिनमें हाथी, सिंह, गेंडे इत्यादि वन्यपशु और बड़े सुन्दर मनोहर पक्षी, बहुत स्वर्ण, हीरे, माणिक, मुक्ता, कपूर, पारद, मिर्च, इलायची—

गौतमी—मैं इस द्वीप को अवश्य देखूंगी, पिताजी, अवश्य ही।

कन्दर्पकेतु—हां, हां, देखना। पहले विहार में प्रवेश तो प्राप्त कर लो। उधर तुम नियम संयम के साथ धर्म की शिक्षा में पारङ्गत होना, इधर मैं निश्चिन्त और एकाग्र मन होकर स्वर्ण और माणिक मुक्ता का संग्रह करूंगा। तुमको पैदल यात्रा का फल मिलेगा और मुझको भी। अब चलो।

गौतमी—चलिये। वारुण द्वीप की यात्रा अवश्य करूंगी।

(वे सब जाते हैं।)

दूसरा दृश्य

[स्थान—श्रीपर्वत (नागार्जुनीकोण्डा) की उपत्यका। उत्तर-पश्चिम में कृष्णा नदी पथरीले दुकूलों में होकर बह रही है। इधर-उधर सघन वृक्षावलि। श्रीपर्वत की उपत्यका में बौद्धों का महाचैत्य। उसके निकट वृक्षों के समूह में एक बौद्ध विहार। पास ही एक उद्यान। बौद्ध-विहार में नित्य नियम के अनुसार धार्मिक कार्य हो रहा है, जो बाहर से दिखलाई नहीं पड़ता है। (छायाभिनय द्वारा प्रकट किया जाय) एक टीले के पीछे से अश्वतुङ्ग अपने मित्र गजमद तथा अनेक साथियों सहित आता है। सब सशस्त्र हैं। घोड़ों को कुछ दूर छोड़ आये हैं जिनकी टापों का शब्द उनके प्रवेश के पहले होता है। अश्वतुङ्ग की आयु बीस बाईस वर्ष की है। सुन्दर आकृति का हृष्टपुष्ट युवा है। धवल धोती पहिने है। शरीर पर कुर्तक, कवच, लोह-पत्रक। कन्धे पर धनुष और बाण-तूणीर। गले में मुक्तामाल, कानों में कुण्डल, भुजाओं पर बलय, कलाइयों पर स्वर्ण के कड़े, पैरों में उपानह। मूछें पतली और छोटी हैं, परन्तु सिरों पर थोड़ी मुड़ी हुई। गजमद इसी आयु का दुबला लम्बा पुरुष है। वेश यही। अश्वतुङ्ग के सिर का उष्णीश रंगीन

कौषेय का है, गजमद का सूती रंगीन । गजमद उतने आभूषण नहीं पहिने है—उसके कानों में छोटे कुण्डल, गले में स्वर्ण की माला। साथियों के कानों में चांदी के कुण्डल हैं । सबकी कटि में खड्ग हैं और कन्धों पर धनुष, बाण-तूणीर । समय—रात का पहला पहर ।]

अश्वतुङ्ग—*(अपने साथियों को रुक जाने का सङ्केत करते हुये ।)* सुनो, यहां क्या हो रहा है ।

(सब रुककर सुनते हैं, फिर अश्वतुङ्गका सङ्केत पाकर बढ़ते हैं ।)

गजमद—*(अश्वतुङ्ग की बराबरी पर आकर ।)* ऐसा भी क्या ! इतनी चुप्पी मारे क्यों चल रहे हो ? स्तब्ध सशस्त्रता सन्देह को उत्पन्न करेगी। दिवस के गिराहीन गगन का सूर्य अपनी रश्मियों द्वारा बोलता है, निशा के निश्शब्द नभ का राकेश चन्द्रिका की वाणी द्वारा अपनी पद-चाप को प्रकट करता है और राकेश न हो तो तामसा में तारे—

अश्वतुङ्ग—ताड़ी पीकर ऊँघते हैं !

गजमद—तरुणी सदृश झिलमिलाते हैं ।

अश्वतुङ्ग—तुम कितने वाचाल हो ! यहाँ तो वाक्-संयम करो ।

गजमद—वास्तव में मैं वाचाल नहीं हूं। नदी के प्रवाह को जहाँ कहीं बाँध दिया जाता है, तब वह रुद्ध हो जाता है । फिर जब प्रचण्ड वर्षा के कारण प्रवाह में पूर आता है, तब प्रशान्त अवरुद्ध, सरिता-सलिल बाँध को तोड़ फोड़कर बह पड़ता है । फलों से लदे हुये वृक्ष झंझावात के झोकों से झुककर प्रार्थियों को फलों का प्रसाद दे उठते हैं । यही मेरा स्वभाव है राजकुमार । कितने समय से स्तब्धता के सङ्कट का सहन करता चला आ रहा हूं ।

अश्वतुङ्ग—हे भगवन् ! तुम्हारा अनुप्रास, अभ्यास और स्वभाव, सब, एक से एक बढ़कर बिकट हैं । वह देखो, सामने से इस विहार का कोई जन आ रहा है । अब अपनी वाचालता के सरिता सलिल

को थोड़े समय के लिये नियन्त्रण के बाँध में रुद्ध रक्खे रहो तो मेरे ऊपर तुम्हारी बड़ी कृपा होगी। विहार के द्वार पर पहुँचने वाले ही हैं।

गजमद—(*होठों पर उँगली रखकर*।) एवमस्तु। कुछ अनुप्रास तो आपको भी आया! (*हँसता है*।)

(*अश्वतुङ्ग सङ्केत से उसको चुप रहने के लिये सावधान करता है। किसी के आने की आहट लेता है।*)

[*जय स्थविर का प्रवेश। सिर मुड़ाये, नङ्गे पैर। नारङ्गी रँग का ढीला वस्त्र कमर से नीचे पहिने है। ऊपर कंचुक। उसकी मुख मुद्रा शान्त गंभीर है। आयु लगभग पचास वर्ष के होगी। वे सब उसको प्रणाम करते हैं। जय स्वस्तिक-कर उठाता है।*]

जय—आप सज्जन समागतों का परिचय?

गजमद—समागत नहीं अभ्यागत जैसा कि—

(*अश्वतुङ्ग कड़ी चितवन से निवारण करता है। गजमद चुप रह जाता है। जय निश्चलता के साथ उसकी ओर देखकर एक क्षण में सब पर दृष्टि घुमाता है, परन्तु वह भय-भीत नहीं है।*)

अश्वतुङ्ग—आचार्य, हम लोग प्रतिष्ठान को जा रहे हैं।

जय—आपको पथ-श्रम हो गया है। यह गुरुवर आचार्य नागार्जुन का श्रीपर्वत, नागार्जुन का कोण्डा है। प्रतिष्ठान को यहाँ से बहुत चक्कर काट कर जाना पड़ेगा।

अश्वतुङ्ग—यह जानते हुये भी हम आपके अतिथि हैं।

गजमद—यह धान्यकटक के पल्लव राजकुमार अश्वतुङ्ग हैं। इनके पिता कुंडुकूर, पितामह विख्यात शिवस्कन्द वर्म्मा, प्रपितामह परम विख्यात कुमार विष्णु वीरकूर्च वर्म्मा और पितृव्य वर्तमान धर्म-महाराजाधिराज वीर वर्म्मा कलिङ्ग, आन्ध्र और कान्ची के जनेश। नाग-वाकाटक कुल के प्रदीप। (*अश्वतुङ्ग व्यग्रता के कारण 'उहँ' करके सिर नीचा कर लेता है।*) चोल-नरेश के साथ अपने

धर्म-महाराज का युद्ध होने वाला है। हम लोग कार्यवश निकल पड़े हैं। दीर्घ यात्रा करके आरहे हैं। मेरा नाम गजमद है। राजकुमार का दिया हुआ नाम। अब इसी से अभिहित और ख्यात हूं। माता पिता का किया हुआ नाम है उड्डङ्क। गजमद नाम से कविता करता हूं। पिता का नाम उत्तल, पितामह का नाम उत्फुल्ल, प्रपितामह का नाम भण्डभद्र। ये सब कवि ही नहीं, महाकवि थे। इनके काव्यों की प्रतिलिपि घर घर में है और होनी चाहिये। मेरे वंशकर्ता वाकाटक सम्राटों के पूर्वज विन्ध्य शक्ति को अपने काव्य द्वारा प्रेरणा दिया करते थे। उनका निवास विन्ध्यखण्ड की काञ्चनका नामक पुरी में था। परन्तु वह साकेत से आये थे। फिर मेरे पूर्वज राजकुमार के पूर्वजों के साथ कोशल में से होते हुये यहां पधारे, और मैं—

अश्वतुङ्ग—आचार्य, यह मेरे मित्र गजमद कवि होने के कारण कभी कभी अधिक बोल जाते हैं। हम लोग रात भर के लिये आपके आश्रम में आश्रय चाहते हैं। प्रातःकाल प्रयाण कर देंगे।

गजमद—*(धीमें स्वर में अश्वतुंग से)* अनुप्रास बुरा नहीं रहा।

जय—*(उसी गंभीर शान्त मुद्रा में)* हमारी गांठ में जो कुछ रूखा सूखा है सो आपको भेंट कर दिया जायगा। आपका स्वागत है। चलकर विश्राम शाला में ठहरिये।

गजमद—आचार्य, विहार में कीर्तन हो रहा है। प्रक्षालन के उपरान्त हमलोग भी कीर्तन द्वारा पवित्र होने की कामना करते हैं।

जय—जैसी आपकी इच्छा। चलिये।

गजमद—फिर एक अत्यन्त आवश्यक विषय पर आप से बात-चीत करनी है।

जय—*(उसी गंभीरता के साथ)* हमारे यहां भगवान की चर्चा के अतिरिक्त और किसी विषय की कविता पर कथोपकथन नहीं होता।

अश्वतुङ्ग—एक और विषय है। राष्ट्र की रक्षा से सम्बन्ध रखने वाला।

गजमद—आप खिन्नमन न हों मैं भी कविता शृंगार रस की महीने में दस बीस दिन ही करता हूं। शेष समय में मार--दाह, शिव--पार्वती-विवाह, कुमार जन्म, ऋतुओं के वर्णन, वीर-पुरुषों के आख्यान इत्यादि, इत्यादि पर ही रचनायें करता हूं। जब कभी शृंगार रस से अनुप्राणित होता हूं, तब बहुत कम—

(अश्वतुंग वर्जित करता है।)

जय—कीर्तन--सदन का मार्ग यह है। *(इंगित करता है)*

गजमद—विहार की व्याख्यान--और तन्त्र--प्रयोगशाला भी वहीं होंगी। हमारा तन्त्र--शास्त्र में विश्वास है। बड़ा उपयोगी शास्त्र है। यह विहार इसके लिये सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। ऋषि नागार्जुन ने अपनी सब क्रियाओं को इसी संस्थान में—

जय—*(थोड़ा सा चलकर)* अब आप विहार के द्वार पर आगये हैं। प्रक्षालन के लिये जल यहीं आजायगा। द्वारपाल के हाथ भेजता हूं।

[जाता है]

गजमद—*(धीमें स्वर में)* इस भिक्षु के मुँह पर इतने समय में एक बार भी तो मुस्कान नहीं आई!

अश्वतुङ्ग—तुम्हारा सरीखा बकवादी भी तो नहीं है।

गजमद– नितान्त रूखा, कविता से योजनों दूर। यह भी क्या जीवन है! मैं यदि इस विहार का आचार्य होता तो इसको कोमलकांत कविताकामिनी के कोकिल कलरव से किलकिला देता। बिना सुगन्धि का सुमन, स्मितहीन सम्पुट, रसरहित रसना, तेजहीन ओज, सौन्दर्य हीन शृंगार, वन्दनवार विहीन वितान जैसे नीरस लगता है वैसे ही—

अश्वतुङ्ग—चुप! चुप!! द्वारपाल आरहा है।

(द्वारपाल जल-कलश और लोटा लेकर आता है)

द्वारपाल—सज्जनो, इधर पधारने का कष्ट करें। प्रक्षालन के लिए स्थान इधर है।

(वे सब जाते हैं।)

तीसरा दृश्य

[स्थान—विहार का कीर्तन-सदन। वीणा, मृदंग, मञ्जीर, तुम्बुरू और स्वर-मण्डल के साथ कीर्तन हो रहा है। सदन की एक ओर अविलोकितेश्वर बुद्ध की मूर्ति रक्खी हुई है। अश्वतुंग और उसके साथी आकर दूसरी ओर बैठ जाते हैं। एक स्थान पर गौतमी और कन्दर्पकेतु भी बैठे हैं। समय-रात्रि।]

कीर्तन का गीत

धम्मं सरणं गच्छामि
संघं सरणं गच्छामि
बुद्धं सरणं गच्छामि
झिलमिल झरप लगी,
एक दीप ने कितने दीप जगाये,
एक कमल ने कितने कमल खिलाये,
एक तार ने कितने तार बजाये,
एक बीज ने कितने विटप सजाये;
जनमन ज्योति जगी।

(कीर्तन की समाप्ति पर कीर्तन मंडली चली जाती है। उनमें से केवल जय, गौतमी और कन्दर्पकेतु रह जाते हैं।)

जय—अब आप सब भोजन करलें।

(अश्वतुङ्ग गजमद के अतिरिक्त अपने अन्य साथियों को हाथ के सङ्केत से हटाता है।)

अश्वतुङ्ग—जब बुलाऊँ तब आजाना।

(वे सब जाते हैं।)

अश्वतुङ्ग—*(जय से)* आपके सङ्गीत–रसायन से हम लोग बहुत प्रभावित हुए हैं। अनेक विहारों में भगवान की उपासना का यह प्रसाधन व्यवहार में लाते नहीं देखा। तान्त्रिक–साधुओं का केन्द्र होने के कारण ही संगीत का यहां इतना सुन्दर उपयोग होता है।

(गौतमी उसकी ओर देखकर दूसरी दिशामें देखने लगती है।)

जय—आप किसी प्रसङ्ग पर बात करना चाहते थे।

अश्वतुङ्ग—हाँ आचार्य। भोजन के उपरान्त शयन का नियम। विहार की नियम–भक्ति और समय–निष्ठा को हम लोग जानते हैं, इसलिए भोजन के पूर्व इसी घड़ी को उपयुक्त समझा।

जय—आपका प्रसङ्ग ?

(गौतमी फिर अश्वतुङ्ग की ओर देखने लगती है।)

अश्वतुङ्ग—चोल नरेश कान्ची के ऊपर आक्रमण करने वाला है। पूर्व युद्धों में द्रव्य का व्यय बहुत हो चुका है। अर्थ-कृच्छ्रता आगई है। स्वर्ण की बहुत आवश्यकता है—

जय—विहार में स्वर्ण का क्या प्रयोजन ? आपतो जानते ही होंगे, अपरिग्रह हमारा पहला मन्त्र है।

अश्वतुङ्ग—आपकी सेवा में हम लोग स्वर्ण–मुद्राओं अथवा स्वर्ण–शिलाओं के निमित्त नहीं आए हैं। उसके लिए और व्यवस्था को ठीक करने के लिए हम लोग यहां से प्रतिष्ठान की यात्रा करेंगे। आप ज्ञानी और विज्ञानी हैं—

(अश्वतुङ्ग गौतमी की ओर देखता है। बीच बीच में एक दूसरे को देखते रहते हैं।)

गजमद—ठहरिये। आचार्य, मैं आपको संक्षेप में ही बतलाता हूं। धर्म–महाराजाधिराज वीर वर्म्मा कान्ची में हैं। यह राजकुमार धान्यकटक में रहते हैं। मैं भी धान्यकटक में ही रहता हूं। इनके

पितामह शिवस्कन्द वर्म्मा अपने को देवपुत्र नहीं कहते थे, क्योंकि यह उपाधि उत्तर आर्यावर्त में कनिष्क ने अपने नाम के साथ युक्त की थी, जो विदेशी था। राजकुमार के पितामह वाकाटक सम्राट प्रवरसेन प्रथम के सहायक थे और दक्षिणापथ में धर्म की स्थापना करते रहे। धर्म स्थापना का कार्य, जैसा कि आप जानते ही होंगे कंटकाकीर्ण रहता है। अर्थात् बहुत व्यय-शील होता है। धर्म-महाराजाधिराज शिव-स्कन्द वर्म्मा ने कान्ची नगरी को मन्दिरों से सजा दिया। आचार्यों, कवियों और कलाकारों को अहोरात्र दान दिये। बौद्ध विहारों की भी बड़ी सहायता की।

जय—जानता हूं, महाशय, आपका प्रसङ्ग ?

गजमद—वही तो, वही तो। संक्षेप में ही कहे देता हूं। बहुत दान पुण्य करने के कारण कोष रिक्त होने लगा। तब उन्होंने बड़े बड़े जलयान, पोत बनवाये। छोटी बड़ी अनेक तरियां और नावें भी। यह सब व्यापार की वृद्धि के लिये किया जिससे आन्ध्र--पथ की प्रजा करों के बोझ से बच जाय और व्यापार--कर से राज्य की श्री वृद्धि हो। काशी में एक ब्राह्मण था। सम्भव है हमारे पूर्व-पुरुषों का उससे कोई सम्बन्ध रहा हो। बात अतीत की है, ठीक स्मरण नहीं। वह ब्राह्मण एक लक्ष मुद्राओं का नित्यदान किया करता था। होते होते उसको दरिद्रता ने घेर लिया। अब सोचिये उसने क्या किया ? कहां काशी और कहां समुद्र तट ! आपतो जानते ही होंगे, सैकड़ों कोस का अन्तर है। पर वाहरे पराक्रमी ब्राह्मण ! आपतो जानते ही होंगे कि धर्म महाराजाधिराज शिवस्कन्द वर्म्मा के पिता कुमार विष्णु वीर कूर्च भारद्वाज गोत्र के ब्राह्मण थे। मेरा भी गोत्र भारद्वाज है। महाधन्य वीर कूर्च ने घोर तपस्या करके क्षत्रियत्व को ग्रहण किया और नाग सम्राट की राजकुमारी के साथ विवाह किया।

(गौतमी मुस्कराती है ।)

अश्वतुङ्ग—संक्षेप में कहो जी अपने उद्देश्य को।

गजमद—यही तो, वही तो। संक्षेप में ही कह रहा हूं। महत्त्व का विषय है न। टोकिये मत। वीर कूर्च ने नाग राजकुमारी के साथ विवाह करने के उपरान्त अपने को क्षत्रिय घोषित किया। मैं क्या कह रहा था? टोक देने से गड़बड़ी होगई।

(*गौतमी हँस पड़ती है और अपना नियन्त्रण करती है।*)

अश्वतुङ्ग—(*थोड़ी सी खिसियाहट के साथ*) यहां आने का उद्देश्य हमारा यह है आचार्य।

गजमद—ठहरिये, ठहरिये। स्मरण हो आया। पहले प्रसङ्ग फिर उद्देश्य। काशी के ब्राह्मण की कथा का सम्बन्ध हमारे प्रसङ्ग और उद्देश्य, दोनों, से है। उस ब्राह्मण ने समुद्र तट पर जाकर जल--पोत लिये और सुवर्ण द्वीप, यवद्वीप, चम्पा, वारुण इत्यादि द्वीपों में गया, व्यापार को बढ़ाया और बहुत स्वर्ण का संग्रह किया। परन्तु हमारे धर्म--महाराजाधिराज शिवस्कन्द वर्म्मा को जीवन का उतना काल--प्राप्त नहीं हो पाया और कैलाश--वासी होगये। इस समय अर्थ की त्रुटि आगई है। तो भी महाराज वीर वर्म्मा बहुत दान पुण्य बौद्ध विहारों की सहायता करते रहते हैं। मैं एक बात भूल गया। राजकुमार को भी विस्मरण होगया। यहां के भिक्षुओं और उपासकों को भेंट करने हेतु हमलोग कपड़े सीने के लिये शूचियां, सुतारियां, क्षौर और भद्र के लिये छुरे पहिनने के लिये वस्त्र लाये हैं।

जय—(*उठी हुई मुस्कान को दबा कर*) धन्यवाद। आपका प्रसङ्ग या उद्देश्य? समय अतीत होने पर हमको अपने सब कक्ष बन्द कर लेने पड़ेंगे।

कन्दर्पकेतु—हमलोग दूसरे कक्ष में चलें।

गौतमी—थोड़ा सा और ठहरिये।

अश्वतुङ्ग—ऋषि नागार्जुन ने पूर्व काल के एक सातवाहन नरेश की गाढ़े समय पर बहुत सहायता की थी।

गजमद—यही मैं कहने वाला था। सातवाहन नरेश युद्ध लड़ते

लड़ते और दान करते करते धनहीन होने लगे, तब ऋषि नागार्जुन ने उनको सदुपदेशों के साथ ही प्रचुर मात्रा में स्वर्ण दिया। आप से प्रार्थना है कि आप भी हमको अनेक उपदेश दीजिये और यथेष्ट मात्रा में स्वर्ण। राष्ट्र को इस समय इन दोनों की आवश्यकता है।

(जय की भ्रकुटि आधे क्षण के लिए संकुचित होती है, फिर मुद्रा गम्भीर हो जाती है।)

जय—मैं पहले ही बतला चुका हूं कि विहार में स्वर्ण नहीं रहता है। भगवान की वाणी का अमृत निस्सन्देह यहां है सो समय पर मिल सकता है। ऋषि नागार्जुन ने सातवाहन नरेश को स्वर्ण के अर्जन की क्रिया मात्र बतलाई थी, स्वर्ण नहीं दिया था।

अश्वतुङ्ग—उसी के, उसी के जानने के लिए हम आपकी सेवा में आए है।

गौतमी—वारुण द्वीप में सोना चाँदी बहुत सुना गया है। पिताजी ने मार्ग में कहा था।

(गौतमी अश्वतुङ्ग की ओर देखकर आँख नीची कर लेती है। अश्वतुङ्ग उसपर से दृष्टि को हटाकर गजमद को रीती आँखों देखने लगता है। इस व्योपार को जय लक्ष करने से नहीं चूकता।)

गजमद—देखिए आचार्य, जैसे धन की सद्गति उपयोग में और पौरुष की उत्सर्ग में, वैसे ही विद्या की दान में होती है। हमारे पूर्वजों के काव्यों की प्रतिलिपि करने के लिए अनेक जन मेरे घर आते हैं। मैं अपनी कविताओं की प्रतिलिपि करने की भी अनुमति देदेता हूं। कभी कृपणता नहीं करता। आपके पुस्तकालय में ऋषि नागर्जुन की जो स्वर्ण-रसायन पुस्तक है हम उसकी प्रतिलिपि करना चाहते हैं। चाहे आपही किसी से करवा दीजिए; कोई बात नहीं। लेखक अक्षर सुन्दर लिखता हो, बस। सो विहार के भिक्षु अच्छा ही लिखते होंगे।

गौतमी—मैं भी अच्छा लिख लेती हूं।

कन्दर्पकेतु—शान्त, बेटी शान्त!

जय—हमारे यहां ऐसी कोई पुस्तक नहीं है।

अश्वतुङ्ग—अवश्य होगी, मुझको विश्वास है।

(जय अधीर हो उठता है !)

कन्दर्पकेतु—(*किसी आने वाले झंझट की शङ्का में ।*) तो हम लोगों के लिए क्या आज्ञा है आचार्य ? चाहता हूं कल प्रातःकाल गौतमी को उपसम्पदा मिल जाय तो मैं धान्यकटक जाकर अपना काम देखूं।

(*अश्वतुङ्ग और गौतमी आधे क्षण एक दूसरे को देखते हैं ।*)

जय—(*किंचित क्षीण स्वर में*) उपसम्पदा के याचक को पहले अकिन्चन और अपरिग्रही बनना पड़ता है। गौतमी का चित्त अभी स्थिर नहीं है। (*ढले स्वर में*) उसके लिये कुछ समय की अपेक्षा है। अभी तो उसको विहार में नहीं लिया जासकता है। रात्रि अतिथि-शाला में बिताइये।

गौतमी—मैं कुछ दिनों पिताजी के साथ समुद्र यात्रा करूँगी, वारुण-द्वीप जाऊँगी।

कन्दर्पकेतु—(*कुछ खिन्न स्वर में ।*) अच्छी बात है, कालान्तर में देखा जायगा। अभी अवधि है, सोचता हूं व्यर्थ ही आया। (*वे दोनों जाते हैं, गौतमी नीचा सिर किये अश्वतुङ्ग को कनखियों देखती हुई जाती है ।*)

अश्वतुङ्ग—आपको तो सारे शास्त्र रटे पड़े होंगे। रसायन शास्त्र भी स्मृति पटल पर अङ्कित होगा।

गजमद—मेरे प्रातःस्मरणीय पिता की स्मरण शक्ति ऐसी विलक्षण थी कि मैं तो उसकी कल्पना से गद्गद् होजाता हूं। उनको चारों वेद, सम्पूर्ण पुराण, कथा सरित-सागर, पन्चतन्त्र और न जाने कितने शास्त्र हस्तामलक थे। मेरे पितामह जिनका नाम मैंने बतलाया था—उनकी क्या कहने ! उनका नाम उत्फुल्ल था। सरस्वती ने स्वयं

उनके जिह्वाग्र पर अपने करकमल से मन्त्र अङ्कित किया था। उन्होंने—

जय—आप लोगों को भोजन करना है या नहीं?

अश्वतुङ्ग—हम राजकुमार इस प्रकार के स्वागत से प्रच्छन्न भोजन को सहज ही ग्रहण नहीं करते। भोजन की बात पीछे पहले यह बतलाइये कि ऋषि नागार्जुन का रसायन शास्त्र आपको कण्ठस्थ है या नहीं।

जय—नहीं है।

अश्वतुङ्ग—नहीं है! अवश्य होगा। यदि कण्ठस्थ नहीं है तो पुस्तकालय में पुस्तक निस्संशय होगी। मैं पुस्तकालय का अवलोकन और निरीक्षण करना चाहता हूं!

जय—अभी! इसी घड़ी!!

गजमद—दिन-रात के किसी क्षण भी कोई काव्य-याचक या गुण-ग्राहक आवे तो हम अपने सम्पूर्ण पोथी पत्रे उसके सामने खोल कर रख देते हैं।

जय—इस घड़ी पुस्तकालय नहीं दिखलाया जा सकता। कल दोपहर के उपरान्त प्रेक्षण किया जासकता है।

अश्वतुंग—और रात में यदि पुस्तक किसी ऐसे स्थान पर चली गई जहां से कभी मिल ही न सके, तब?

गजमद—ऐसा प्रायः होते सुना गया है। दो एक बार मैंनेही—

अश्वतुंग—ठहरोजी, आचार्य उत्तर दीजिये।

जय—उत्तर दे चुका हूं।

अश्वतुंग—अर्थात् आप इस समय पुस्तकालय का निरीक्षण नहीं करने देंगे।

जय—नहीं करने दूँगा।

गजमद—सोच लीजिये आचार्य, जैसा मैं राजकुमार का मित्र हूं,

वैसा ही आपका हितैषी। एक बार जब मैंने अपना काव्य-ग्रन्थ दिखलाने से नाहीं की, तब राजकुमार के समझाने-बुझाने पर—

अश्वतुङ्ग—ठहरोजी! *(गजमद चुप हो जाता है। अश्वतुङ्ग जय की ओर प्रतीक्षा में निहारता है)*

जय—महाचैत्य के विहार का अपमान मत करो राजकुमार। भङ्ग करने के लिये नहीं बनाये जाते हैं नियम।

अश्वतुङ्ग—आप जानते हैं आप हमारा कितना तिरस्कार कर रहे हैं। हम भारद्वाज गोत्रीय, अश्वत्थामा की सन्तान कभी तिरस्कार सहन नहीं कर सकते।

जय—परन्तु हम अपना तिरस्कार सहने की शक्ति रखते हैं।

अश्वतुङ्ग—*(सरोष)* पीछे पछताओगे, भिक्षु।

जय—हमको केवल अपने पाप के लिये पछताना पड़ता है।

अश्वतुङ्ग—मूर्ख कहीं का! *(तीन बार ताली बजाता है, उसके सैनिक घुस पड़ते हैं।)*

अश्वतुङ्ग—इस भिक्षु को घेरे रहो तुममें से कुछ। मैं पुस्तकालय का निरीक्षण करूँगा। कहाँ है जी तुम्हारा वह पुस्तकालय?

जय—नहीं बतलाऊँगा। मृत्यु के सिर पर आ जाने पर भी अपनी जिह्वा को पाप के वशीभूत नहीं होने दूँगा।

(दो तीन सैनिक जय को बांध लेते हैं। अश्वतुङ्ग गजमद और कुछ सैनिकों के साथ भीतर जाने को है।)

जय—पहले भोजन करलो राजकुमार, तब कर लेना यह कर्म, भूखे होगे।

गजमद—जैसे मानो तुम्हारे सूखे चावल चबाने और इमली का जल पीने के लिये ही हम लोग यहाँ आये हों। धरे रहो अपना भोजन। अनुसन्धान हो जाय तो चलो व्याख्यान-शाला में और फिर सुनो हमारा व्याख्यान जिसमें रस, आनन्द—

अश्वतुङ्ग—तुम न बतलाओ तो हम स्वयं खोज लेंगे। ऐसे न मिला तो हम आग लगा देंगे फिर तो दौड़ोगे फड़फड़ाकर पुस्तकालय को बचाने के लिये। *(सैनिकों से)* भिक्षु को हमारे पीछे पीछे लाओ।

(बंधे हुये जय को लेकर वे सब जाते हैं।)

चौथा दृश्य

[स्थान—वन पर्वत का मार्ग, दूरी पर खेत और खेतों की एक ओर बड़ा गाँव। अश्वतुङ्ग, गजमद इत्यादि आते हैं। वे सब शस्त्र सज्जित हैं। समय—सन्ध्या।]

अश्वतुंग—यही है वह गाँव। मैं यहीं प्रतीक्षा करूँगा। तुम लोग श्रेष्ठी को जैसे बने तैसे ले आओ।

गजमद—श्रेष्ठी के मन की बातें करता हुआ मैं अभी लिये आता हूं। श्रेष्ठी धन-लोलुप होते हैं, सम्पत्ति-प्रमत्त नहीं होते। कविता-कानन का भ्रमण न करने पर भी वे उनके सुमन-सौरभ की सुगन्धि से थोड़े बहुत परिचित तो होते ही हैं। शब्दों के सौष्ठव की सहायता से श्रेष्ठी को मैं ले आऊँगा। मैं—

अश्वतुंग—कुशल है कि इतना तो जानते हो। गजमद, तुम मेरे निकट ही रहोगे। तुम्हारे जाने से श्रेष्ठी विचकित हो जायगा। उचित नहीं है।

(गजमद वहीं रुक जाता है। सैनिक जाने लगते हैं।)

अश्वतुंग—श्रेष्ठी का नाम चन्द्रस्वामी है।

(सैनिकों का सिर नवाकर प्रस्थान।)

गजमद—खेद है कि आपको संसार का इतना ज्ञान होने पर भी कविता की शक्ति का पूरा आभास नहीं है।

अश्वतुङ्ग—मैं तुम्हारी प्रतिभा में विश्वास करता हूं। अब करलो मनचाही बात।

गजमद—शङ्कर भगवान ने ब्रह्मा से सृष्टि का सृजन करवाके चराचर को भाषा दी। रस उत्पन्न किये। परन्तु रसों का अनावरण किसने किया? आदि कवि ने न? वृक्षों की सरसता, टहनियों के कोमल किसलय, मञ्जरियों की मञ्जुलता मोहनियों की छवि-छटा, कल-कंठों की मधुरता, कोकिल और सारिका के कलरव, सघन घन की सौदामिनी, वीणा की झङ्कार, ऋषियों की वाणी, वीरों के शौर्य, पुण्य की गाथा, नदियों के निनाद, देवों की श्रद्धा, इत्यादि किसने अभिव्यक्त किये?

अश्वतुङ्ग—बस! इत्यादि पर आगये!!

गजमद—यज्ञ-वह्नि की हुंकार, प्रभात कालकी ऊषा और सन्ध्या की अरुणिमा की व्याख्या और अभिव्यञ्जना कवि ही तो करता है। कविता के प्रभाव से ही संसार और समाज संचालित हो रहा है। राजनीति तक।

अश्वतुङ्ग—अब कुछ विवेक की बात करो।

गजमद—जैसे अभी तक जो कुछ कहा वह निरा अविवेक था!

अश्वतुंग—कभी कभी तुम सीमा का उल्लंघन कर जाते हो। उस रात जय-भिक्षु से तुमने बात का इतना वितण्डा कर दिया कि उसके शिष्यों में से किसी के कान में भनक पड़ गई और नागार्जुन की पुस्तक को किसी अगम्य स्थान में छिपा दिया गया। पाटने पाटने पर भी विहार के उन जड़-बुद्धियों ने नहीं बतलाया। सीधा प्रश्न करते, सीधा उत्तर मिलता। उसको सोचने का समय मिल गया, वह हठधर्मी कर गया। अन्यथा रसायनशास्त्र का ग्रन्थ हाथ लग जाता और अभी तक स्वर्ण की राशियाँ अपने सामने आ जातीं। अब श्रेष्ठी आ रहा होगा। उसके सामने अपनी कविता कौमुदी को विवेक के आवरण में बनाये रखना। इसके उपरान्त प्रतिष्ठान चलकर अपने राज्य की स्थापना करनी है। फिर कदाचित् युद्ध भी हो। परन्तु यह सब क्या तुम्हारे शब्द-कौतुक से योजनायें सफल हो जायँगी?

गजमद—समझ में आ गया। मौन साधन करूँगा। आवश्यकता पड़ने पर ही एकाध बात करूँगा। विवेक के आवरण में ही कविता—

कौमुदी को छिपाऊंगा। उसमें से वह घूंघट डाले सी झांकेगी। वाह! अच्छा कहा!!

(नेपथ्य में—अरे तो घसीटते क्यों हो? चल तो रहा हूं। ऐसा आचरण तो कोई सम्राट भी नहीं करता। *(सैनिक चन्द्र स्वामी को पकड़े हुये लाते हैं। वह उतरती अवस्था का मोटा मनुष्य है।)*

एक सैनिक—महाराज-कुमार अश्वतुङ्ग यह रहे।

(चन्द्र स्वामी प्रणाम करता है।)

चन्द्रस्वामी—महाराजकुमार की जय हो! मेरे साथ ऐसा आचरण क्यों किया गया? मैं वैसे भी आ रहा था। इस बर्ताव के कारण सम्पूर्ण ग्राम क्षुब्ध है।

सैनिक—यह आने में विद्रूप कर रहे थे। कहते थे कि मैं ग्राम-तन्त्र का प्रमुख हूँ, मेरे अनेक जलयान पूर्व-समुद्र मे व्यापार के लिये जाते हैं, पचास सहस्र वृषभों का टाँड़ा लादता हूँ और न जाने क्या क्या। दर्प के साथ बोले, राजकुमार को यहीं ले आओ!

अश्वतुंग—हुँ! अच्छा, इनको पाश से मुक्त करदो।

(सैनिक उसके बन्धन खोल देते हैं।)

चन्द्रस्वामी—क्या आज्ञा है?

अश्वतुंग—तुमको विदित है कि कान्ची पर चोल-नरेश आक्रमण करने वाला है? राज्य को स्वर्ण की बहुत आवश्यकता है। तुम सम्पन्न हो। राज्य की रक्षा के लिये जितना हो सके दे डालो। राज्य की क्षेम के बिना तुम्हारे अनेक जलयान असमर्थ हो जायँगे, और तुम्हारा टाँड़ा भी अव्यवस्था के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। कान्ची की रक्षा करना सबका धर्म है। समाज के लिये ही तो व्यक्ति का जीवन सार्थक है।

गजमद—वह कान्ची जिसको कैलास-वासी धर्म महाराजाधिराज शिवस्कन्दवर्म्मा ने काशी के पद पर पहुँचाने का प्रयास किया, वह कान्ची जो दक्षिणापथ में शिवशङ्कर की एक ही पुरी है, वह कान्ची जिसमें बड़े बड़े योगी, विद्वान, शास्त्रज्ञ, याज्ञिक, महाकवि रमण विचरण करते हैं,

वह कान्ची जिसके मन्दिर-निर्माण की वास्तुकला विश्व में अद्वितीय होने जा रही है, वह कान्ची जिसके शिवालयों के शिखिर, घट-कलश और कमल नित्य संसार को सन्मार्ग का सन्देश देते हैं, वह कान्ची—

(चन्द्रस्वामी कुछ कहने के लिये व्यग्र दिखलाई पड़ता है। अश्वतुङ्ग संकेत-द्वारा गजमद का निवारण करता है।)

अश्वतुंग—कहो श्रेष्ठी, क्या कहना चाहते हो?

चन्द्रस्वामी—महाराजकुमार, हम लोगों ने विश्वसनीय सूत्र से आज ही सुना है कि चाल-राज ने महाराजाधिराज वीरवर्म्मा को पराजित करके कान्ची को अपने अधिकार में कर लिया है।

(वे सब आश्चर्य में पड़ जाते हैं।)

अश्वतुंग—कब हुआ यह?

चन्द्रस्वामी—तीन दिन हो गये।

(अश्वतुङ्ग के भीतर हर्ष और विषाद का द्वन्द छिड़ जाता है। वह अपने को संयत करता है। संयम की यह क्रिया स्वर से फिर भी प्रकट हो जाती है।)

अश्वतुंग—हम इसको पराजय नहीं मानते। कान्ची हमारी है और हम उसको पुनः प्राप्त करके रहेंगे।

गजमद—हे भगवन्!

अश्वतुंग—हम जिस योजना के परिशीलन-निमित्त धान्यकटक से निकले हैं, उस पर इस दुःखद समाचार का कोई कुप्रभाव नहीं पड़ सकता। अब तो यह और भी आवश्यक हो गया है कि हम अविलम्ब स्वर्ण का संग्रह करें। शीघ्रता करो श्रेष्ठी। स्वर्ण राशि जो तुम्हारे घर में एकत्र है तुरन्त हमारे हाथ में दो अन्यथा बहुत कष्ट में पड़ जाओगे।

गजमद—कान्ची की मुक्ति के लिये इसकी परम आवश्यकता है।

चन्द्रस्वामी—पहले किसी युग में भी ऐसा नहीं हुआ, महाराज कुमार! हा!!

अश्वतुंग—अपने ही युग को कितने जन जानते हैं? फिर विगत युगों की बात का ढकोसला करना बुद्धि की केवल विडम्बना है।

गजमद—योगियों, कवियों और विद्वानों के अतिरिक्त और कोई भी किसी भी युग को नहीं जानता; न वर्तमान को, न भूत को।

अश्वतुंग—बोलो श्रेष्ठी! चुप मत रहो। स्पष्ट कहता हूँ, नाहीं करने से तुम्हारी खाल उधेड़ दी जायगी और अन्य प्रकार से भी मान-मर्दित होजाओगे।

चन्द्रस्वामी—(*पीड़ा के साथ*) आप ग्राम-सभा के निर्णय को तो मानेंगे? सब मानते आये हैं।

अश्वतुंग—आपद्धर्म में ग्राम-सभा के निर्णय को न मानकर अपनी ही प्रज्ञा से काम लूंगा। मेरी प्रज्ञा शास्त्रों को वाणी को भी बोलती है। जब तक ग्राम-सभा को हमारे ये सैनिक ठीक निर्णय पर पहुँचाने के लिये कटिबद्ध रहेंगे तब तक तुम स्वर्ण को एक पल का भी विलम्ब किये बिना घर के बाहर करो और मेरे हाथों में सौंपो।

चन्द्रस्वामी—(*घिघिया कर*) सोचिये महाराज कुमार. आपके पूर्व पुरुष धर्म महाराजाधिराज कहलाते आये हैं। उनकी पल्लवेन्द्र पदवी जगद्विख्यात है। आप जो कर रहे हैं वह आर्य-परम्परा नहीं है, अधर्म है।

गजमद—धर्म के विषय पर जैसी व्याख्या मैं दे सकता हूँ तुम नहीं दे सकते। धर्म के तत्व बहुत सूक्ष्म और दुर्बोध होते हैं, धर्म—

अश्वतुङ्ग—ठहरो। (*सैनिकों से*) श्रेष्ठी को यहीं किसी निकटवर्ती वृक्ष से कसकर बाँधना होगा। बाँध कर कुछ सैनिक पहरे पर रहो। मैं गाँव में जाकर इनके घर को देखता हूँ।

गजमद—श्रेष्ठी, तुमको धन्यवाद देना चाहिये कि तुमको प्राण-वध का दण्ड नहीं दिया जा रहा है। सोचो, विचार करो, बाँधे जाने और शरीर पर दण्ड-रुद्धारण की क्रिया से तुम्हारे स्वास्थ्य को कुछ लाभ ही होगा। स्थूलता कम हो जायगी। अपार धन-राशि के एकत्रीकरण में तुमने

जाने और अनजाने जितने पाप किये होंगे, उस धनराशि के तिरोहित हो जाने और शरीर के इस व्यायाम से तुम्हारे पापों का प्रक्षालन हो जायगा।

(चन्द्रस्वामी रो पड़ता है।)

अश्वतुङ्ग—ले चलो इस मूर्ख को। *(सैनिक बाँधने लगते हैं।)*

चन्द्रस्वामी—महाराजकुमार, स्वर्ण मेरे घर में बहुत कम है। चलकर देख लीजिये, मेरा सारा स्वर्ण व्यापार में लगा हुआ है।

अश्वतुङ्ग—तुम्हारे घर का निरीक्षण करूँगा। राष्ट्र विपत्ति में है, इस कारण यह कार्य अनिवार्य हो गया है।

(सब जाते हैं)

पाँचवां दृश्य

[स्थान—प्रतिष्ठान नगर का राजभवन। भवन के द्वार पर द्वारपाल खड़े हैं। भवन में सुसज्जित मन्च हैं। बीच में एक ऊंचा मन्च है। वह रीता है। कुछ मन्चों पर नगर-सभा के नागर और प्रमुख बैठे हैं। भट्टनागर द्वारपालों के पास किसी के स्वागत के लिये खड़ा है। सब के सब धवल धोतियाँ पहिने हैं। शरीर पर रंग बिरंगे कुर्तक, कन्चुक। सिर पर भिन्न भांति के रंगीन उष्णीश। गले में और भुजाओं पर आभूषण। समय—दिन।]

एक द्वारपाल—मान्य भट्टनागर जी, महाराजकुमार अश्वतुङ्ग पधार रहे हैं।

(अश्वतुङ्ग गजमद के साथ सभा भवन में आता है। उसके कुछ सैनिक द्वारपालों के निकट रह जाते हैं। भट्टनागर उसको प्रणाम करता है। सब परस्पर शिष्टाचार और अभिवादन करते हैं। अश्वतुङ्ग को ऊँचे आसन पर बिठला दिया जाता है। एक व्यजन-वाहक उसके पीछे आकर पंखा झलने लगता है। वह केवल धोती पहिने है। गले और कलाइयों पर चांदी के आभूषण।)

भट्टनागर—कान्ची के पतन का कुसमाचार हम लोगों को पाँच दिन के भीतर ही अश्वारोहियों द्वारा मिल गया था। अब क्या आज्ञा है धर्म-महाराजाधिराज की ?

अश्वतुङ्ग—प्रतिष्ठान प्रान्त का शासन कुछ समय से राजपुरुष के हाथ में नहीं है। अस्थायी व्यवस्था के लिये धर्म-महाराजाधिराज ने आप लोगों के हाथ में शासन दे दिया था। अब व्यवस्था को स्थायित्व देने के हेतु उन्होंने आज्ञापत्र देकर मुझको यहाँ भेजा है। आज से नगर का शासन आप सज्जनों के हाथ में देकर शेष प्रान्त की व्यवस्था मैं स्वयं करूँगा। महादण्डनायक और बलाधिकृत तथा अन्य उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति का अधिकार भी मेरे पितृव्य महाराज ने मुझको प्रदान किया है। उनका स्वहस्ताङ्कित आदेश-पत्र यह है।

(कौषेय वस्त्र पर लिखे हुए आदेश पत्रको अपने वस्त्रों में से निकाल कर भट्टनागर को देता है। वह उसको पढ़लेता है। पढ़कर चुप रहता है)

अश्वतुंग—इसकी सत्यता में आपको क्या कुछ शङ्का है ? भली भाँति परीक्षण कर लीजिये। धर्म महाराजाधिराज वीरवर्म्मा और उनके मन्त्रिमण्डल के इस पत्र पर हस्ताक्षर हैं।

भट्टनागर—*(विनय के साथ)* महाराजकुमार की सत्यता में हम को शङ्का और सन्देह करना ही क्यों चाहिये ? परन्तु इस प्रकार के आदेश पत्र से हमारे जनपद भर के अखिल परम्परागत स्वत्वों और अधिकारों पर बड़ा भारी आघात पहुँचता है।

अश्वतुंग—कैसे, नागर ?

राजमह—यह आज्ञा पल्लवेन्द्र की है भट्टनागर जी। मेरे समक्ष यह आज्ञा दी गई और लिपिबद्ध की गई। हस्ताक्षर मेरी उपस्थिति में हुये। राजा की अवज्ञा, देवताओं का अपमान, कवि की अवहेलना, नारी की स्वेच्छाचारिता, नागरों की उद्दण्डता, वर्षा की प्रचण्डता और मूढ़ता का अभिमान सर्वनाश को लाये बिना नहीं रहता।

भट्टनागर—पल्लव नाम का हमारे मन में आदर है। पल्लवेन्द्र के पराक्रमों को सम्पूर्ण भारत जानता है। पल्लवों ने जनमत का निरादार कभी नहीं किया, सब कोई कहते हैं। हम नागरिकों, नागरों और जनपद सभा के पञ्चों की सहमति लिये बिना किसी राजपुरुष की नियुक्ति प्रतिष्ठान में नहीं की जाती। अब की बार इस परम्परा का उल्लंघन क्यों किया गया?

अश्वतंग—राजाज्ञा हो चुकी है, अपनी सहमति की छाप अब लगा दो, परम्परा का प्राण बच जायगा।

भट्टनागर—जनपद के अधिकारों का उपहास मत करिये महाराज कुमार।

अश्वतंग—स्पष्ट कह डालो अब तुम क्या करना चाहते हो।

भट्टनागर—हम इस आज्ञा का पालन तब तक नहीं करेंगे जब तक कि जनपद सभा का अधिवेशन नहीं हो गया और जब तक उस अधिवेशन में निर्णय नहीं हुआ कि इस आदेश-पत्र को मान्यता दी जाय अथवा नहीं। नियम है कि पहले पल्लवेन्द्र जनमत को पूछ बता लेते हैं, तब इस प्रकार की आज्ञा का प्रचलन करते हैं। जनपद अपने अधिकार का त्याग नहीं करेगा।

गजमद—गगन के चुम्बन का प्रयास करने जा रहे हो, नागर! उस गगन के चुम्बन का जिसमें उल्काओं का प्रवास है!!

अश्वतंग—इस आदेश-पत्र को कार्यान्वित कराने के लिये मेरी सेना का सम्बल भी है, इसको न भूलना।

भट्टनागर—जब जनपद अपने अधिकारों की रक्षा का हठ करता है, तब वह इसको या उसको, किसी को भी, नहीं भूलता।

अश्वतंग—तुम और तुम्हारे सब सभासद, नागर, इत्यादि विपद में पड़ने वाले हैं।

भट्टनागर—आप मार्ग में दीन किसानों की खड़ी खेती को उजाड़ते हुये आ रहे हैं वह भी हम सबको विदित हो गया है। क्या कृषि-विनाश

की भी आज्ञा पल्लवेन्द्र ने दी थी? हमको इस अन्यायपूर्ण राजाज्ञा के हस्ताक्षरों का सत्यता में सन्देह है। हम अपना सिर दे देंगे, परन्तु अपने अधिकारों को पद-दलित नहीं होने देंगे।

अश्वतुंग—तो अब राजाज्ञा का पालन कराने के लिये करें हमारे सैनिक अपना कर्तव्य?

भट्टनागर—राजकुमार, सावधान! हम थोड़े से प्रतिनिधियों को प्राणदण्ड अथवा बन्दगृह-यातना देने से न तो आप सुख का अर्जन कर सकेंगे और न आपके सन्तान। प्रतिष्ठान का सम्पूर्ण जनपद उठ खड़ा होगा।

अश्वतुंग—तुम बहुत अभद्र हो। प्राणदण्ड तो नहीं दूँगा, परन्तु तुमको बन्दगृह में डाल दूँगा।

अन्य नागर—(*खड़े होकर*) हम सबको भी।

अश्वतुंग—हाँ तुम सब मूर्खों को। (*ताली बजाता है। उसके थोड़े से सैनिक आजाते हैं।*) इन सबों को पकड़ो।

(*सैनिक अल्पसंख्या में होने के कारण केवल दौड़ धूप करते हैं, पकड़ने में अपने को असमर्थ पाते हैं*)

अश्वतुंग—कविराज गजमद, तुम मेरे शिविर में जाकर अन्य सैनिकों को ले आओ और सभा-भवन को घेर लो।

गजमद—रे रे मूर्ख सभासदो! धन, बुद्धि, स्त्री, मित्र, पुत्र, पड़ोसी, बाहुबल, विद्या व ही हैं जो समय पर काम दें।

अश्वतुंग—(*क्रोध के साथ बात काटकर*) तुरन्त जाकर सैनिकों को ले आओ।

(*गजमद जाता है। नेपथ्य में घोड़ों की टापों की तुमुल ध्वनि होती है। अश्वतुङ्ग अपने सैनिकों को बाहर जाकर देखने का संकेत करता है। वे जाते हैं। भट्टनागर और अन्य सभासद धैर्य के साथ खड़े रहते हैं। योधा वेश में महादण्डनायक के पीछे अनेक सशस्त्र योधा आ जाते।*)

महादंडनायक—महाराजकुमार अश्वतुङ्ग कहाँ हैं ?

अश्वतङ्ग—यह रहा। क्या चाहते हो ?

महादंडनायक—(*प्रणाम करके*) आप मञ्च से नीचे उतर आवें।

अश्वतङ्ग—क्यों ?

(*महादण्डनायक अपने वस्त्रों में से कौषेय के पटके पर लिखी हुई एक आज्ञा को निकालता है*)

महादंडनायक—धर्म महाराजाधिराज वीरवर्म्मा पल्लवेन्द्र की इस आज्ञा को इसी क्षण लिये आ रहा हूं। उनका आदेश है कि आपको वन्दी बनाकर धान्यकटक ले चलूँ।

अश्वतङ्ग—झूठ! छल कपट!! सब झूठ!!!

(*महादण्डनायक राजाज्ञा को खोल कर दिखलाता है।*)

महादंडनायक—इस पर पल्लवेन्द्र के हस्ताक्षर हैं और मन्त्रियों के भी।

अश्वतङ्ग—मेरा अपराध ?

महादंडनायक—इसका निर्णय महाराज स्वयं करेंगे। मैं और कुछ नहीं कह सकता। चलिये मेरे साथ।

भट्टनागर—अभी अभी महाराजकुमार ने एक राजाज्ञा, इसी प्रकार की हस्ताक्षित, हम लोगों को दिखलाई थी और कहा था कि सभा को शासन के अधिकारों से वञ्चित किया गया और इनको शासक नियत किया गया!

महादंडनायक—कहाँ है, वह राजाज्ञा ?

अश्वतङ्ग—यह है, देख लो।

(*अश्वतुंग उस कथित राजाज्ञा को महादण्डनायक के हाथ में दे देता है, वह उसको पढ़ता है।*)

महादंडनायक—इस राजाज्ञा को कान्ची से घोषित किया जाना लिखा गया है। पल्लवेन्द्र धान्यकटक में हैं, जहां से सच्ची आज्ञा को मैं ला रहा हूँ। महाराजकुमार का दिया हुआ लेख बनावटी और छलपूर्ण है।

(उस पत्र को महादण्डनायक अपने पास रख लेता है)

भट्टनागर—अब कहिये, महाराजकुमार ।

अश्वतुङ्ग—किस राजाज्ञा के मूल में छल है । इस प्रश्न का उत्तर मेरा खड्ग देगा, मेरे सैनिक देंगे ।

(पहले इसके कि अश्वतुंग अपने खड्ग को कोश के बाहर निकाले, महादण्ड नायक के सङ्केत पर उसके योधा उसे पकड़ लेते हैं । अश्वतुङ्ग के थोड़े से सैनिक भी पकड़ लिये जाते हैं । नेपथ्य में रौरा मचता है)

महादंडनायक—खड्ग का भरोसा मत करिये, राजकुमार । आपके सैनिकों को पल्लवेन्द्र की सेना द्वारा पहले ही नियन्त्रित कर आया हूँ ।

(नायक के कुछ योधा गजमद को बांधे लिये आते हैं ।)

गजमद—छोड़ दो ! छोड़ दो !! मैंने किया क्या है ? कविकुल कोकिला के कण्ठ का कचूमर करने से तुम सब रौरव नरक में जाओगे ! छोड़ दो मुझको !!

म० द० नायक—महाराजकुमार के इस विदूषक को भी बन्दी बनाने की राजाज्ञा है । इसको छोड़ना मत ।

भट्टनागर—पल्लवेन्द्र वीरवर्म्मा कान्ची से कब आ गये ?

म०दं०नायक—कान्ची-पतन के तुरन्त उपरान्त आ गये । वहाँ उसी समय कुछ अपवाद पहुँचे सो उन्होंने अविलम्ब इस राजाज्ञा को मुझे सौंपकर ससैन्य भेज दिया । मैं धान्यकटक को लौट रहा हूँ । महाराज कुमार के कण्टक शोधन के सम्बन्ध में आपको साक्षी होगी इसलिये आप भी मेरे साथ पधारें ।

भट्टनागर—चलूँगा । आप थोड़ा विश्राम नहीं करेंगे ?

म०द०नायक—कुछ दूरी पर रात भर विश्राम करके ही तो हम लोग यहाँ आ रहे हैं ।

(अश्वतुंग गजमद और उनके साथियों को बन्दी बनाकर महादण्डनायक और उसके योधा जाते हैं)

भट्टनागर—जान पड़ता है यह राजकुमार पल्लवेन्द्र के विरुद्ध विद्रोह खड़ा करके प्रतिष्ठान का एकतन्त्री अधिपति बनना चाहता था। यदि सभा ने अधिकार-इच्छा का हठ न किया होता तो निश्चय ही व्यर्थ का रक्तपात होता। अब मैं भी धान्यकटक जाने का संयोजन करूँ।

(सभासद हामी का सिर हिलाते हैं ।)

छटवां दृश्य

[स्थान—धान्यकटक नगर का राजमार्ग। नर नारी आजा रहे हैं। अश्वतुंग गजमद और उनके साथियों को बाँधे हुए महादंड-नायक और उसके योधा आते है। समय-दिन।]

अश्वतुंग—*(सिर नीचा किए हुए गजमद से धीमे स्वर में)* भूलना मत—उस राजाज्ञा का छल हम लोगों ने नहीं रचा था, किसी ने हम लोगों के हाथ मे पत्र को दिया था।

गजमद—*(धीमे स्वर में)* किसने ?

अश्वतुंग—किसी अश्वारोही ने जिसको उस समय पहिचान नहीं पाया था और अब जान पड़ा कि चोलराज का कोई भेदिया था। परस्पर लड़ा देने का उसने यह छद्म रचा।

गजमद—नहीं भूलूंगा। मूर्ख थोड़े ही हूँ। मेरे पितामह—

महादण्डनायक—मार्ग में मत खड़े हो, आगे बढ़ो विदूषक !

गजमद—कौन कहता है, मैं विदूपक हूँ ?

(योधा उन सब को लेजाते हैं।)

एक नागरिक—धन्य है पल्लवेन्द्र वीरवर्म्मा ! अपने भतीजे को भी नहीं छोड़ा !!

दूसरा—न्याय इसी को कहते हैं।

एक—कान्ची की पराजय का कारण इसी राजकुमार के पाप हैं, नहीं तो क्या हमारे राजा को चोलराज पराजित कर सकता था ?

दूसरा—ठीक, ठीक। कान्ची को मिटवाकर यह प्रतिष्ठान को अपना अड्डा बनाता, फिर धान्यकटक पर आक्रमण करता। राष्ट्र के टुकड़े टुकड़े करना ही इसका उद्देश्य रहा होगा।

एक—इसको शूली देनी चाहिये।

दूसरा—अथवा देश निकाला।

एक—मैं न्यायाधीश होता तो प्राण-दण्ड देता। अश्वतुङ्ग ने और भी अनेक पाप किये हैं।

दूसरा—पापिष्ठ तो बहुत बड़ा है। दीन हीन किसानों की खड़ी खेती इसने उजाड़ दी! कोई भी नहीं करता ऐसा!! कहीं भी होते नहीं सुना!!!

एक—सुना है उतराखण्ड में शक और हूण करते रहते हैं इस प्रकार का अत्याचार।

दूसरा—परन्तु अश्वतुङ्ग या उसके साथी तो शक या हूण नहीं हैं।

एक—सो तो सब जानते हैं। कैसी अनहोनी की इसने! आज साक्षी होगी और निर्णय भी आज ही हो जावेगा। आज ही इस अनहोनी का दण्ड भी दे दिया जायगा।

दूसरा—चलो न! बहुत जन जायँगे। उत्सव सा होगा।

एक—हाँ चलो। सुनेंगे अश्वतुङ्ग आरोप का क्या उत्तर देता है। कल्पना करो क्या कहेगा। और वह विदूषक भी।

दूसरा—अश्वतुङ्ग कोई भी उत्तर नहीं देगा। देखना तो यह है कि वह अर्द्ध विक्षिप्त मूर्ख गजमद क्या कहता है। अपने को कवि बनाता है! ह!! ह!!! ह!!!!　　　　　　　　*(वे सब जाते हैं)*

सातवां दृश्य

[स्थान—धान्यकटक के राजा-प्रासाद का सभा भवन। राजा वीरवर्म्मा पल्लव जो लगभग पचास वर्ष की आयु का है, ऊँचे मञ्च पर बैठा है। उष्णीष में मुकुट मुक्ताजटित मालायें। गले में

स्वर्ण की मुक्तामाला। यज्ञोपवीत। भाल पर त्रिपुण्ड। कानों में मोतियों के बड़े बड़े कुण्डल। भुजाओं पर वलय केयूर और कलाइयों पर स्वर्ण के मणिजटित चूड़े। शरीर उघाड़ा है धवल धोती पहिने है। मञ्च के नीचे यथा स्थान मन्त्रिगण और द्वारों पर द्वारपाल। राजा के पीछे व्यजन-ग्राहक, ताम्बूल और सुगन्ध-ग्राहक खड़े हैं। वे भी आभूषण पहिने हैं, परन्तु उनके आभूषण चाँदी के हैं। मन्त्री भी आभूषण पहिने हैं। और उघाड़े हैं। द्वारपाल योधा वेश में है। धोती, कुर्तक, कन्चुक पहिने हुए। राजा के सिंहासन के ऊपर चौखट की बड़ेरी पर बड़े बड़े अक्षरों में अङ्कित है—सम्यक प्रजा पालन--मात्राधिगत राज्य प्रयोजनस्य। समय—दिन।]

राजा—अभियुक्तों को प्रस्तुत करो।

मन्त्री—जो आज्ञा।

(*द्वारपाल अश्वतुंग, गजमद और कुछ सैनिकों को लाते हैं।*)

राजा—तुम लोगों ने नागार्जुनी कोंडा स्थित महा चैत्य के विहार का अपमान किया? विहार के भिक्षुओं को मारा पीटा?

अश्वतुंग--नहीं किया।

राजा—तुमने चन्द्रस्वामी श्रेष्ठी को लूटा?

अश्वतुंग—लूटा तो नहीं।

राजा—तुमने प्रतिष्ठान के जनपद में किसानों के खड़े खेत उजाड़े?

अश्वतुंग—नहीं तो! कौन कहता है?

राजा—कुछ क्षण उपरान्त जान जाओगे। तुमने प्रतिष्ठान के भट्टनागर और अन्य प्रतिनिधियों का अपमान किया?

अश्वतुंग—उस बर्ताव को वे अपमान कहते हैं! आश्चर्य है!!

राजा—तुमने झूठा आदेश पत्र बनाकर भट्टनागर को अपदस्थत करने का छल किया?

अश्वतुंग—मैंने उस पत्र को झूठ नहीं समझा।

राजा—(*गजमद से*) तुम अश्वतुङ्ग के साथ थे?

गजमद—श्रीमन् महाराजाधिराज की जय हो। जैसे रश्मि रवि का, कविता कवि का, रस शृङ्गार का, सत्य नित्यता का, शब्द अम्बर का—

राजा—चुप विदूषक! यह राजसभा है, नाटकशाला नहीं है। सीधा उत्तर दो।

गजमद—परन्तु श्रीमन्त, मैं विदूषक नहीं हूं। मेरे पिता महाकवि उत्पल, पितामह उत्फुल्ल—

राजा—चुप वाचाल! बोलो साथ थे अश्वतुङ्ग के?

गजमद—पहले ही निवेदन किया कि—हां, महाराज साथ तो अवश्य था। सदा रहता हूँ।

राजा—तुमने भी उन सब पापों में अश्वतुङ्ग को अपना सहयोग दिया?

गजमद—पाप तो कोई भी नहीं था। महाराजकुमार ने विहार के जय भिक्षु से ऋषि नागार्जुन लिखित रसायनशास्त्र को मांगा, उन्होंने कहीं छिपा दिया, इन्होंने अनुसन्धान किया फिर बस भिक्षुओं ने अपमान किया वही दीर्घ तिरस्कार, इन्होंने उनकी देह को थोड़ा सा दण्ड व्यायाम दिया। मैंने कुछ नहीं किया।

(*अश्वतुङ्ग उसकी ओर आँखें तरेरता है।*)

राजा—जब तुम्हारे घोड़ों ने किसानों के खेतों को नष्ट किया तब तुम कहां थे?

गजमद—वहीं था, परन्तु घोड़ों को चरते हुये तो मैंने नहीं देखा। महाराजकुमार से पूछ लीजिये मैं हरित भरित तृण—संकुलित भूमि और नव पल्लव किसलय कुसुम—आच्छादित वृक्षावलि का अवलोकन कर रहा था।

राजा—श्रेष्ठी चन्द्रस्वामी की सम्पत्ति की चोरी!

गजमद—श्रीमन्त, वैसे ही चाहे शूली दे दीजिये। यह शरीर नश्वर है; किसी दिन भस्म हो जायगा; आत्मा अमर है जिस प्रकार महाकवियों के वाक्य—

राजा—चुप! चोरी में साथ थे या नहीं?

गजमद—नहीं था। मैं तो गाँव के बाहर रह गया था। महाराज कुमार गाँव में गये थे। (*अश्वतुंग फिर आँखें तरेरता है*) अर्थात् श्रेष्ठी ने भोजन के निमित्त बुलाया था। मुझको क्षुधा नहीं थी, इसलिये मैं बाहर ही रह गया था।

राजा—इस असत्य पत्र की बात जानते हो?

गजमद—जैसे सघन घन की घोर घटाओं में कादम्बिनी गुप्त रहती है वैसे ही यह पत्र महाराजकुमार के वस्त्रों के नीचे था।

राजा—कहां से आया इनके हाथ?

गजमद—मुझको स्मरण नहीं। कहीं से भी तो आया होगा।

अश्वतुंग—स्मरण करो गजमद। क्या तुम भूल गये?

गजमद—कुछ भी तो नहीं भूला। जितना और जो कुछ आपने बतलाया था सबका सब स्मृति पटल पर अङ्कित है।

अश्वतुंग—मैंने बतलाया था! मूर्ख!!

(*गजमद सिकुड़ जाता है*)

राजा—गजमद, तुमने प्रतिष्ठान की जनपद-सभा में कहा था कि इस पत्र पर मेरे और मेरे मन्त्रियों के हस्ताक्षर तुम्हारे सामने हुये थे।

गजमद—कहा था तो क्या हुआ, श्रीमन्त! जैसे दूध के बड़े मटके में थोड़ा सा जल मिला देने से मटके के दूध को संसार में कोई पानी नहीं कह सकता, उसी प्रकार किसी महान सत्य में थोड़ा सा कुछ और मिला देने से सत्य असत्य तो हो नहीं जाता, श्रीमन्त।

(*राजा थोड़ा सा मुस्कराता है। मन्त्री हँसी को कपड़े से रोक लेते हैं। बाहर—नेपथ्य में—कुछ जन कह उठते हैं—'वाहरे विदूषक!' अश्वतुंग नतमस्तक है। गजमद अपनी बात पर प्रसन्न है।*)

राजा—(*अश्वतुंग से*) तुम्हारे वस्त्रों के नीचे यह पत्र कैसे पहुँचा?

अश्वतुंग—अब ज्ञात हुआ है कि चोलराज ने कपट-जाल रचकर इस पत्र को मेरे पास भेजा था जिसमें मेरी और श्रीमन्त की परस्पर ठन जाय।

राजा—आरोपियों और साक्षियों को बुलाओ।

मन्त्री—जो आज्ञा।

(द्वारपाल जय, चन्द्रस्वामी, कन्दर्पकेतु, गौतमी कुछ किसानों और भट्टनागर को ले आते हैं। वे सब राजा को प्रणाम करते हैं। गौतमी अश्वतुंग की ओर देखकर मुँह फेर लेती है)

अश्वतुङ्ग—*(धीमें स्वर में)* सब एक साथ ही!

राजा—*(गजमद से)* इनको चीन्हते हो न?

गजमद—इन सबको! नहीं तो महाराज। केवल भिक्षु श्रेष्ठी और भट्टनागर को पहिचान सकता हूँ।

किसान चिल्ला पड़ते हैं—इसने और *(अश्वतुंग की ओर हाथ उठाकर)* उसने निर्दयता के साथ हमारे अन्न को चराया और रोंद।

गजमद—रोंदा कहाँ?

किसान—इसने बका भी था।

राजा—*(जय से)* तुम्हारा कथन क्या है?

जय—हम अपने मारे पीटे जाने को क्षमा करते हैं, परन्तु महाचैत्य के विहार का अपमान किया गया है, जो भारी अपराध है। उसका न्याय करें श्रीमहाराज। *(भिक्षु शान्त गम्भीर मुद्रा में है)*

गजमद—महाचैत्य से तो दूर है वह विहार! वही विहार न जहाँ तुमको केवल बाँधा गया था। पीटा तो नहीं था।

राजा—हुँ! चन्द्रस्वामी, तुम क्या कहते हो?

चन्द्रस्वामी—मुझको गाँव से महाराजकुमार के सैनिक बाँधकर बाहर लाये और फिर मुझको पीटा गया और स्वर्ण-हरण किया गया।

गजमद—पीटा कब गया! मेरे सामने जब बँधे हुये आये तब तो किसी ने भी नहीं ठोका-पीटा।

अश्वतुंग—मूर्ख कहीं का! *(धीरे से)* लुटिया डुबोदी अभागे ने!!

(गौतमी मुस्कराती है)

राजा—(*अश्वतुङ्ग से*) जिस पत्त और तिथि का यह पत्र कपट-जाल है उस तिथि में मैं या मेरे मन्त्री काञ्ची में नहीं थे। यदि चोलराज ने यह छल रचा होता तो वह पत्र में काञ्ची का नाम न लिखता।

गजमद—कुमार, आप कहते हैं कि मैं भूल गया! अब बोलिये वास्तव में कौन भूला--मै या आप?

अश्वतुंग—गधा कहीं का! चुप!!

(गौतमी मुँह दाब कर हँसती है)

राजा—तुम सबका अपराध सिद्ध है। अन्य साक्षियों के कथन की आवश्यकता नहीं रही। अब दण्ड के सम्बन्ध में मेरा निर्णय सुनो—तुमको सदा के लिये देश से निष्कासित किया जाता है। पूर्व की ओर, समुद्रपार किसी द्वीप पर तुमको छोड़ दिया जायगा। तुम्हारे साथ सात सौ सैनिक थे उन सबको तुम्हारे साथ ही बहिर्गत किया जाता है। तुम्हारी सम्पत्ति का एक भाग श्रेष्ठी चन्द्रस्वामी को, दूसरा भाग महाचैत्य के विहार को दे दिया जावेगा और तीसरा राज-कोष में मिला दिया जावेगा। मुझको काञ्ची की हार इतनी नहीं अखरी जितना तुम्हारा अपराध। ले जाओ इन सबको यहाँ से।

जय—एक याचना है, श्रीमन्त से।

राजा—क्या?

जय—विहार को जिस भाग के प्रदान का आदेश हो रहा है वह अपराधियों के पास ही रहने दिया जाय, विहार नहीं लेगा। यदि इनके हाथ में अपरिचित द्वीप में कुछ अर्थ रहेगा तो ये अपने जीवन के सुधारने में अधिक सुगमता के साथ समर्थ हो सकेंगे।

(राजा एक क्षण विचार मग्न रहकर हामीं का सिर हिलाता है)

(अश्वतुंग जय की शान्तमुद्रा को एक क्षण आँख गड़ा कर देखता है, फिर नतमस्तक हो जाता है)

राजा—(*कन्दर्पकेतु से*) तुम्हारा जलयान यहाँ से कब जावेगा?

कन्दर्पकेतु—कल श्रीमन्त !

राजा—उसमें वन्दियों के लिये स्थानावकाश है ?

कन्दर्पकेतु—नहीं है, श्रीमन्त।

राजा—(*चन्द्रस्वामी से*) तुम्हारा महाजलयान यहाँ से पूर्व की ओर कब जाने वाला है ?

चन्द्रस्वामी—इसी पक्ष में चार दिन उपरान्त, श्रीमन्त।

राजा—उसमें स्थानावकाश होगा ?

चन्द्रस्वामी—हाँ श्रीमन्त।

राजा—तब तुम इन सबको अपने महाजलयान में भरकर ले जाना और किसी ऐसे द्वीप में छोड़ देना जहाँ इनको अपनी कुत्सित वृत्तियों का पूरा दमन करने में प्रयत्नशील रहना पड़े।

चन्द्रस्वामी—जो आज्ञा।

गौतमी—(*धीमें स्वर में कन्दर्पकेतु से*) दण्ड बहुत कठोर है।

कन्दर्पकेतु—जैसा अपराध, वैसा दण्ड।

गजमद—(*रुआसे स्वर में*) हाय ! वहाँ मेरा क्या होगा ?

राजा—जब तक जलयान की यात्रा नहीं हुई है, तब तक इन सबको सतर्कता के साथ कारागार में बन्द रक्खा जावे।

मन्त्री—जो आज्ञा।

(*द्वारपाल उन सब को ले जाते हैं*)

दूसरा अंक

पहला दृश्य

[स्थान—आन्ध्र के पूर्व की ओर का समुद्र । समुद्र की तरंगें साधारण सी उद्वेलित हैं । समुद्र में पश्चिम की दिशा से एक बड़ा जलयान आता है । इसका रूप नाव का जैसा ही है । बीच में चौड़ाई बहुत, सिरों पर थोड़ी सी ही । इस पर लाल रंग पुता हुआ है । जलयान दो खण्ड वाला है । छत पर भी कुछ ढके हुये कक्ष हैं । छोटे-बड़े मस्तूल अनेक । उनके ऊपर मोटे-लम्बे लट्ठे पर पल्लवों की पताका फहरा रही है । जलयान के ऊपरी प्रांगण पर आड़ों के पीछे अश्वतुंग और गजमद खड़े हैं । माझी अपने अपने काम पर जुटे हुये हैं । अवन्तिसेन महानाविक प्रांगण के बीच में एक मस्तूल के निकट खड़ा है । अवन्तिसेन अधेड़ अवस्था का हृष्ट पुष्ट पुरुष है । उसके आस पास कुछ कउओं के पिंजड़े रक्खे हैं । जलयान मध्यम गति के साथ पूर्व की ओर जा रहा है । प्रांगण पर कुछ कर्मचारी गायन कर रहे हैं । समय—दिन मध्याम्ह के उपरान्त ।]

* मल्लाहों का गीत *

प्रकृति ने पुरुष हृदय में बैठ, प्रभो, पाया है जो संस्थान,
किसी का है वह प्राणाधार, किसी का है वह जीवन-मान;
विकल की वह जो केवल तान, दीन का वह जो केवल गान--
ध्यान का वही एक आदान, हमारा बन जावे वरदान।
सजग वह ध्यान, अचल अवलम्ब, रहे निधि वह अक्षय अम्लान,
अमिट वह गान, अजर वह तान, अमर वह रहे प्रभो, वरदान।

(अश्वतुङ्ग समुद्र की लहरों को देखते हुए भी नहीं देखरहा है। उसकी आँखों में रीतापन है। वह कुछ दुर्बल होगया है। गजमद भी दुर्बल है, परन्तु उसकी आँखों में रीतापन नहीं है। थोड़ी देर में गीत समाप्त होजाता है।)

गजमद—समुद्र शान्त गहन गम्भीर होते हुये भी आलोड़ित विडोलित भी है। एक ऊर्मि के आने के पहले कहीं जलराशि में भँवर पड़ जाती है तो कहीं मन्द मन्थर विपुल समतल के नीचे निश्चल सी जलरेखाओं के साथ रवि-रश्मियां आलिङ्गन करती हुई प्रतीत होती हैं। फिर जहां भुजङ्ग सदृश भुजायें उठाये हुये तरङ्ग आई कि आभा नाचती हुई उसके ऊपर अठखेलियाँ करने लगी और भँवर-कूप तथा समतल अदृश हुआ। फिर देखो वह दूसरी तरंग आई। तुङ्गार, तुङ्गार ! अरी तनिक ठहर भी जा। यह जो कहीं कूप सा खनित हुआ है और प्रभा कामिनी के नृत्य के लिये वहाँ नील कुमुदों का समतल बन गया है उसको एक क्षण के लिये तो बना रहने दे। वह भी अदृश्य हुआ और तीसरी तरङ्ग आई। जीवन यहीं है ! यही जीवन है !! अहा हा ! अहाहाहा !!

(अश्वतुङ्ग चौंकता है)

अश्वतुंग—क्या है जी ! क्या गीत समाप्त हो गया ?

गजमद—नहीं तो।

अश्वतुंग—(*कान देकर*) सुनाई तो नहीं पड़ता।

गजमद—कहीं कुछ तो था।

अश्वतुंग—पहले कुछ हो रहा था?

गजमद—अब भी हो रहा है।

अश्वतुंग—नहीं तो।

गजमद—यह जो तरङ्गों की मर्मराहट है, क्या यह गीत नहीं है? माझियों के गीत से कहीं अच्छा गीत। आप कहाँ थे? समुद्र की ये बड़ी बड़ी लीलायें क्या आपके अगोचर थीं?

अश्वतुंग—तुम वास्तव में सुखी हो। धान्यकटक को छोड़े आज सातवाँ दिन है, पर तुमको जैसे कुछ अखरा ही नहीं है। जन्मभूमि का दर्शन फिर कभी नहीं होगा। *(निश्वास परित्याग करता है)* जैसा किया वैसा पाया।

गजमद—जन्मभूमि के लिये एकान्त में रो लेता हूँ और भविष्य के लिये सबके सामने हँसता रहता हूँ। आप तो मानो आठों पहर रोते से ही रहते हैं।

अश्वतुंग—तुमने मुझको कभी रोते देखा?

गजमद—आकृति ही कह रही है।

अश्वतुंग—आगे के लिये सोचा क्या करना है?

गजमद—जिस महादेव ने देह दी वही आगे की चिन्ता करेगा; कौन अपने मूड़ को खपाये!

अश्वतुंग—देखूँ किस द्वीप पर निर्वासित किये जाते हैं हम लोग। सुना है इस दिशा में कहीं कोई द्वीप ऐसे भी हैं जहां मनुष्य-भक्षी नर, पिशाच, राक्षस और न जाने कौन कौन रहते हैं।

गजमद—उसी को प्रतिष्ठान समझकर युद्ध करना और एक राज्य की स्थापना कर लेना।

अश्वतुंग—और यदि निश्शस्त्र करके छोड़ दिये गये तो मनुष्य-भक्षी तुमको मुझको सबको खाजायँगे।

गजमद—मनुष्य-भक्षी नरों का अस्तित्व कवि की कल्पना है; कवि की कल्पना द्वारा ही उनका विनाश कर दिया जावेगा। इतनी छोटी सी बात आपकी समझ में क्यों नहीं आती ? बोलिये मूर्ख मैं हूँ या आप ?

अश्वतुंग—मैं भी तुम्हारा सरीखा मूर्ख होता तो क्या बात थी ! परन्तु मेरा अहङ्कार खा गया मुझको।

गजमद—मैं मूर्ख नहीं हूं, कुछ क्षणों के लिये राज-सभा में, अब ज्ञान पड़ता है कि, मूर्ख बन गया था सो आपसे कई बार क्षमा मांग चुका हूं।

अश्वतुंग—उस विषय का सदा के लिये त्याग करो। आगे की सोचो।

गजमद—नितान्त व्यर्थ। जो होना होगा, होगा। एक बात निश्चित है कि कुछ न कुछ होगा, क्या होगा उसको कोई नहीं जानता है।

अश्वतुंग—महानाविक जानता होगा, अपनी कविता द्वारा फुसलाकर पूछो न। उसको निस्सन्देह कोई निश्चित आदेश दिया गया होगा। क्या कहते हो ?

गजमद—जैसे सूखे काठ में रस, पत्थर में चपलता, जल के भीतर अग्नि, दुष्ट में कविता, महिषी में सुरीलापन, रात्रि में सूर्य, वज्र में दया, कृपण में उदारता, प्रस्तर में केशर, घुन के भीतर गेहूँ, निबिड़ अन्धकार में आभा, कउए में तान, भिखमंगे में मान, अहङ्कार में सौंदर्य, अज्ञान में बोध, कुल्हाड़े में ममता का वास नहीं होता उसी प्रकार महानाविक में अनुभूति की विभूति—अ हा हा हा ! वह देखो अबकी बार कितनी बड़ी तरङ्ग अपने यान की ओर आ रही है !!

(अश्वतुङ्ग के रूखे होंठों पर हँसी आकर बिखर जाती है।)

अश्वतुंग—अच्छा तो तुम्हारे किये कुछ नहीं हो सकता।

गजमद—कुछ तो हो सकता है, आपके मुर्झाये हुये मुखारविन्द पर हँसी की थोड़ी सी झलक को तो ले आया।

अश्वतुंग—(*तुरन्त गम्भीर होकर*) ठीक कहते हो कविराज, हँसी बहुत बड़ी देन है। (*सोचने लगता है*)

गजमद—उस दिन राजसभा में मैंने महाराज को भी कुछ मुस्कान तो दी थी। मैंने क्या कहा था? (*सिर खुजलाता है और अपनी कनपटी के ऊपर एक चपत लगाता है*) स्मरण नहीं हो रहा है। अस्तु कोई बात नहीं। काव्य सामग्री का अखण्ड भाण्डार संचित है यहाँ। एक रत्न को राज-सभा में वितरित कर दिया तो उसके स्थान पर अनेक आगये। ओ हो हो! वह देखो अबकी बार और भी बड़ी तरङ्ग आई!! उसके नीचे कितने बड़े बड़े कूप बनते चले आरहे हैं!!! तरङ्ग के कुञ्चित कुन्तलों पर फेन पुष्पों की मालायें प्रमत्त नृत्य करती हुई सी आ रही हैं!!!!

(*अबकी बार अश्वतुंग के होटों पर कुछ अधिक हँसी आती है*)

अश्वतुंग—तुमसे आज मैंने एक बात पाई और गाँठ में दृढ़ता के साथ बाँध ली। आगे जो कुछ भी भाग्य का लिखा बुरा भला आवे मैं हँसा करूँगा, निरन्तर हँसा करूँगा, निर्बाध हँसूँगा।

गजमद—मेरे प्रदानों की गणना करने के लिये आपको लेखक नियुक्त करना होगा। इस पर भी आपने मुझको कई बार मूर्ख कहा! हँसी देने वाला कवि, महाकवि ही नहीं, देवता कहलाने योग्य होता है।

अश्वतुंग—मैं तुमको महाकवि की संज्ञा से सम्बोधित किया करूँगा।

गजमद— 'स' का अल्पान्श में ही अनुप्रास आया; मैं इस पदवी को तब तक स्वीकार नहीं करूँगा, जब तक आप कहीं के महाराज नहीं मान लिये गये हैं।

(*अबकी बार और भी बड़ी तरंग आती है*)

अश्वतुंग—समुद्र कुछ क्षुब्ध होता दिखता है।

गजमद—ताड़ जैसी लम्बी इस तङ्गी तरङ्ग ने मंजुल मंगल मोद-मयी मेरी कल कोमल कल्पना को खर्व करने की ठानी है क्या?

(तरंग जलयान से आकर टकराती है और जलयान डोलने लगता है)

गजमद— यह क्या ! यह क्या !!

अश्वतुंग—सुस्थिर रहो, कविराज । हँसी को मत भूलो ।

(तरंग के टकरा जाने के उपरान्त समुद्र बहुत विषम हो जाता है । पवन झंझावात का रूप पकड़ लेता है ।)

गजमद— लगता है जैसे समस्थल क्षेत्र पर किसी ने अचानक शिलायें, रोढ़े, कङ्कड़ डाल दिये हों । जैसे समुद्र ने पहले होठ सिकोड़े हों और फिर खोलकर काले काले दाँत दिखला रहा हो ।

(महानाविक कऊओं का एक पिंजड़ा लिये प्रांगण में कुछ आगे आता है ।)

महानाविक - सावधान ! सावधान !! सब जन अपने अपने कक्ष में जाओ । बवण्डर आ रहा है, समुद्र और भी अधिक चञ्चल होने वाला है । भूमि कहीं निकट नहीं दिखलाई पड़ती । देखता हूं, कितनी दूरी पर और किस दिशा में भूमि है ।

(गजमद और अश्वतुङ्ग उसके पास आकर खड़े हो जाते हैं । महानाविक पिंजड़े के सब कऊओं को छोड़ देता है । वे आकाश में उड़ने लगते है । महानाविक चिन्तित दृष्टि से उनका परीक्षण करता रहता है । कऊये यान पर मंडराते रहते हैं और कुछ समय पीछे महायान पर आजाते हैं । समुद्र उदण्डता पर है)

महानाविक—(*एक क्षण सोच कर*) पालों को गिरादो ! सब पालों को गिरादो !! कालिकावात है, कालिकावात है !

(माझी दौड़ पड़ते हैं और पालों के खोलने गिराने में व्यस्त हो जाते हैं ।)

अश्वतुंग—(*महानाविक से*) महानाविक जी, हम लोग कहाँ हैं और किधर जा रहे हैं ?

महानाविक—(क्रुद्ध स्वर में) चुप रहो ! कहाँ हैं और कहाँ जा रहे हैं आये पूछने वाले कहीं के !! समुद्र में हो और मौत के मुँह में जा रहे हो !!! जाओ यहां से अपने कक्ष में !!!!

(गजमद घबराया हुआ है। अश्वतुङ्ग की त्योरी चढ़ती है, परन्तु वह अपने को तत्काल नियन्त्रित कर लेता है और होठों पर मुस्कान लाने का प्रयत्न करता है। प्रांगण से दोनों अपने कक्ष में चले जाते हैं। आँधी आती है। पालों के उतार लेने पर भी जलयान डिगमिगाने लगता है। महानाविक पार्श्व में पड़ी तुरही को कई बार फूकता है। माझी और यान के अनेक संचालक प्रांगण पर आजाते हैं। वे सब हड़बड़ाये हुये हैं, परन्तु महानाविक के सामने दृढ़ हो जाते हैं)

सब—आज्ञा ?

महानाविक—अपना महायान यदि किसी जलस्थित पर्वत शिखिर से टकराकर छिन्न होगया तो सर्वनाश होजायगा। छेद हो जाने की परिस्थति में छोटी नावों को जल में छोड़ने का उपक्रम रखना। जाओ अपने काम पर।

(वे सब जाते हैं। चिंता व्यग्र चन्द्रस्वामी आता है)

चन्द्रस्वामी—महानाविक ! महानाविक !! इस यान को और हमारी सामग्री को बचाओ !!!

महानाविक—(*ऊँचे अविचलित स्वर मे*) पहले मनुष्यों की रक्षा का उपकरण, फिर सामग्री का। जाइये, अपने कक्ष में।

चन्द्रस्वामी—(*उसी व्यग्रता के साथ*) यदि यान में जल भर आया तो कक्ष में पड़े पड़े ही साँस घुट जायगी।

महानाविक—वह तो यों भी सम्भव है।

चन्द्रस्वामी—अब क्या होगा ? अब क्या होगा महानाविक ! मेरी सामग्री !! मेरा व्यवसाय !!! और घर द्वार न जाने कितनी दूर !!!!

(महानाविक दिशा निर्देशक को हाथ में लेता है)

महानाविक—(*दिशा निर्देशक को देखते हुये पोत की झूम के साथ, परन्तु निष्कम्प स्वर में*) हम लोग पूर्व-दक्षिण की दिशा में हैं। इसी ओर नाग-द्वीप होगा। कह नहीं सकता कहाँ।

चन्द्रस्वामी—हे भगवान शङ्कर, विष्णु, बुद्ध, देवी, अवलोकितेश्वर, रक्षा करो! बचालो तो मन्दिर, विहार, चैत्य सब बनवाऊँगा!! सब बन-वाऊँगा!!!

महानाविक—(*अधिक ऊँचे स्वर में*) श्रेष्ठी जी, अपने कक्ष के भीतर जाकर भजन कीजिये और मन्दिर, विहार इत्यादि बनवाइये। मुझको यहां अपना काम करने दीजिये। जाइए!

(*चन्द्रस्वामी डिगमिगाता हुआ जाता है*)

(*महानाविक बढ़ते हुये बवण्डर और मचे हुये समुद्र में आने आन्दोलित पोत को देखकर आकाश की ओर सिर उठाकर आखें समुद्रपर गड़ाता है। आकाश में इतने बादल छा गये हैं कि अंधेरा हो गया है। वृष्टि होने लगती है। चमक चमक कर बिजली कड़कती है। महानाविक वहीं खड़ा रहता है। उसके होंठ सटे हुये हैं और ठोड़ी कण्ठ-कूप पर चिपक सी जाती है एक माझी दौड़ता हुआ आता है।*)

महानाविक—क्या है? क्या छेद हो गया!

माझी—(*घबराये हुये स्वर में*) यान में पानी भरने लगा है, कह नहीं सकता कैसे।

महानाविक—शङ्कर का नाम लेकर तुरन्त छोटी नावों को पानी में डाल दो। इन नावों में पहले मन्त्रियों और श्रेष्ठी चन्द्रस्वामी को। स्थान बचे तो अपराधियों में पहले अश्वतुङ्ग और उसके विदूषक को फिर उनके साथियों को। इसके उपरान्त सब के सब यहीं आ जाओ, नाव मिल गई तो वैसा, नहीं तो शङ्कर भगवान को अपनी अन्तिम सामूहिक प्रार्थना सुना कर जल समाधि ले लेंगे। जाओ!

माझी—हे भगवन्, इस पोत में न जानें कितने पापी भरे हुये हैं। (*माझी जाता है। यान समुद्र में डुबकियां सी लेता हुआ जाता है*)

दूसरा दृश्य

[स्थान—नागद्वीप समूह के मध्यवर्ती एक बड़े द्वीप का किनारा। किनारे पर ऊँची नीची पहाड़ियाँ हैं। समुद्र की हिलोड़ों द्वारा फेंका हुआ अश्वतुङ्ग पहाड़ियों के बीच के एक छोटे से रेतीले टीले पर पड़ा हुआ है जो ऊपर से नीचे की ओर ढालू होता चला आया है। इस टीले के सिरे पर खुदखुदरी चट्टानें हैं। टोरों के बीच बीच में, इधर उधर, समुद्र की कहीं छोटी और कहीं लम्बी भुजायें गई हैं। पहाड़ियों के पीछे सघन वन है। पहाड़ियो के पार्श्वों से समुद्र की लहरों के थपेड़ों का शब्द आ रहा है। कुछ क्षण उसी प्रकार पड़े रहने के उपरान्त अश्वतुङ्ग हिलता डुलता है। फिर धीरे धीरे बैठता है। उसके वस्त्र अधगीले हैं। वह समुद्र की दिशा में देखकर थर्रा जाता है। खड़े होने का प्रयास करने पर गिर पड़ता हैं। घिसट घिसटकर टीले के ऊपर पहुंच जाने की धुन में है। कुछ समय उपरान्त चढ़ जाता है और हाँफ कर बैठा रहता है। यह जानने के लिये इधर उधर देखता है कि कहाँ आ गया हूँ। एक चट्टान का सहारा लेकर खड़ा हो जाता हैं। एक ओर बड़ी खाई और समुद्र जल को देखकर पीछे हटकर बैठ जाता है। फिर खड़ा होता है और थोड़ी दूर वाली चट्टान के सहारे कांपता हुआ खड़ा रहता है। उस ओर कोई खाई नहीं है, चट्टानों पर चट्टानें चढ़ती उतरती, द्वीप के वन में घुसती सी जान पड़ती है। समय—दिन।]

अश्वतुंग—(*बैठे गले से*) गजमद ! गजमद !! ओ गजमद !!! (*कान लगाकर सुनता है, परन्तु समुद्र के गर्जन तर्जन के अतिरिक्त और कुछ नहीं सुनाई पड़ता*) तो कहाँ गया ? यहीं कहीं होगा। कुछ

भीतर चलूँ। (*कमर पर हाथ डालता है, फिर कन्धों पर*) गांठ में कोई हथियार नहीं। इन पत्थरों से काम नहीं चलेगा क्या ? (*दो पत्थर उठाता है उनको परखकर*) व्यर्थ हैं। (*फेंक देता है*) पापियों को निर्वासित करने के लिए कदाचित यही द्वीप है। कोई न कोई तो होगा ही यहाँ ? भूख लग रही है, चिल्लाऊँ। अरे कोई है यहा ? (*कान लगाता है*) यहां तो कोई भी नहीं है। अब क्या करूँ ? समुद्र ने प्राण नहीं लिये तो क्या अब यह द्वीप ले लेगा ? हुँ ! (*कुछ सोचता है*) क्या मैं मरने से भयभीत हूँ ? अच्छा, भयभीत होने से क्या होगा, थोड़ा सा बचा हुआ पुरुषार्थ भी निश्शेष हो जावेगा न ? ओह ! मैंने हँसने का ठानी थी। तो किस पर हँसू ? महानाविक, चन्द्रस्वामी, गजमद पर ? या किस पर ? इस प्रचण्ड समुद्र पर ? इन चट्टानों पर ? इसके सघन वन पर ? छिह ! (*थकावट के कारण रुककर बैठ जाता है और कुछ क्षण बैठा रहता है।*) हँसी ने उस घड़ी पुरुषार्थ दिया था। तब गजमद पर हसा था। अब ? अब किस पर हँसू ? जब तक कोई नहीं मिला है तब तक अपनी मूर्खताओं पर क्यों न हँसू ? और फिर मौत के मुँह पर जहां मेरी मूर्खताएँ मुझको ले आईं और लिये जा रहा है। तो हँसू क्यों न ?(*हंसता है,हसी फीकी रहती है*) भूख में अच्छी हंसी नहीं आ रही है। तो क्या खाऊं ? इन पत्थरों को चबाऊं ? (*और भी फीकी हँसी हँसता है*) या इस रेत को फांकू ? (*हंसी थोड़ी सी और बढ़ती है*) कुछ पुरुषार्थ तो बढ़ा। परन्तु स्थिर कब तक रहेगा ? भूख तो आंतों को भस्म किये डाल रही है। अच्छा, महाराजकुमार अश्वतुंग ! अरे !! महाराज कुमार !!! नहीं, नहीं, हंसी रुद्ध हो जायगी—गधे ! उल्लू !! पड़वे !!! मेढ़े अश्वतुङ्ग !!!! भाई वाह क्या नाम पाया है तुमने; अपनी वह कमाई करते करते घोड़े के शीर्ष से उतरते हुये उसकी पूँछ के नीचे जा अटके ! फिर दी उसने लातें और फेंक दिया इधर। ह ! ह !! ह !!! अच्छा वहां चलकर, अश्व-पुच्छ, अब तुम पेड़ों की पत्तियों को चबाकर इस राक्षसी क्षुधा को शान्त करो। (*उठता है परन्तु गिर पड़ता है*) चला ही नहीं जाता। तो अब

मौत आ रही है ! आओ मेरी नानी की नानी । (धीमें गिरे और टूटे स्वर में) सो···ते में··तुमको···दे · ख···न · हीं पाऊँगा·· औ·· र···न · तु···म···प र हँ··स पा · ऊँगा ··

(पत्थर पर लटक जाता है और अचेत हो जाता है । वह कुछ समय उसी प्रकार पड़ा रहता है । फिर चट्टान की नोकों पर से सिर हटकर नीचे खिसक पड़ता है । उसी समय जङ्गल से एक प्रकार के गान की ध्वनियां आती हैं जिनमें हू हा अधिक है । कुछ काले, बहुत नाटे स्त्री-पुरुष आते हैं । इनके बाल घुँघराले और छितरे-बिखरे हैं । पुरुषों के शरीर पर कोई वस्त्र नहीं । कमर पर लाजरक्षा के लिये, खाल और पत्ते लटकाये हैं । कन्धे पर छोटी सी कमान और बांस के नोकदार तीरों का गट्ठा बांधे हैं हाथ में बांस के नुकीले लट्ठ लिये हैं । स्त्रियां लम्बाई में पुरुषों की अपेक्षा और भी छोटी हैं । इनके वक्ष और कमर पर लज्जा-निवारण के लिये वल्कल इत्यादि हैं । ये हाथो में लाठियां लिये हैं । पुरुषों के गले में हड्डियों के टुकड़ों के आभूषण हैं और स्त्रियों के गले में पतले बांस की छोटी छोटी पुङ्गियों के हार । सबके सब गुदने गुदवाये हैं । स्त्रियां अपने केशों में कुछ फूल भी गूँथे हैं । स्त्री-पुरुष—सब—की नाक बैठी हुई और नथने छितराये हुये, माथे सकरे । सबकी आयु तरुणता से लेकर उतरती अवस्था तक की है । उनमें से कुछ एक ऊँची टोर पर खड़े होकर इधर उधर आंख दौड़ाते हैं । चट्टान के पास पड़े हुये अश्वतुङ्ग को देखकर कुछ चिल्लाते हैं और द्वीप की ओर भागते हैं और कुछ उसको उठाकर ले जाते हैं । अश्वतङ्ग अभी अचेत है ।)

तीसरा दृश्य

[स्थान—उसी द्वीप का दूसरा भाग जो जङ्गल है । एक वृक्ष समूह के निकट लकड़ी और बांसों के क्रम-हीन झोपड़े हैं जो पत्तों

से छाये हुये हैं। एक ओर बड़े बड़े लक्कड़ों की आग जल रही है। आग के इधर उधर द्वीप के नाटे निवासी उछलकूद का नृत्य कर रहे हैं और हा हू ही हो का गान कर रहे हैं। नृत्य के पद-चारण का संग देने के लिये काठ के टुकड़ों की टक्करों से ताल उत्पन्न किया जा रहा है। कुछ द्वीप निवासी लक्कड़ों से बांधे हुये गजमद को लाते हैं और एक पेड़ से टिका देते हैं। वह इस दृश्य को देखकर भय और आश्चर्य में डूब डूब सा जाता है। उसके लाये जाने पर नृत्य और गान कुछ और गतिवान हो जाता है। कुछ क्षण उपरान्त एक झोपड़े से एक वृद्ध पुरुष आता है। इसकी जटायें, दाढ़ी, मूछ सब लम्बी और खिचड़ी रङ्ग की हैं। इस पुरुष का क़द लम्बा है। नाक बिलकुल सीधी और रंग गेहुआँ। शरीर पर वल्कल वसन। आभूषण इसके भी वे ही हैं जो नाटे द्वीप निवासियों के हैं। परन्तु वह गुदने नहीं गुदवाये हैं। उसके आते ही नृत्य और गान बन्द हो जाता है। नाटे द्वीप निवासी उसके पास आते हैं और भीड़ लगाकर चिल्लाते चिल्लाते रोते हैं। जब वे थोड़ी देर रो लेते हैं, तब वह वृद्ध एक हाथ को ऊँचा उठाता है। हाथ उठते ही रोना बन्द हो जाता है। लक्कड़ से बँधे खड़े गजमद को वृद्ध ध्यान के साथ देखता है, फिर उसके निकट जाता है। अधिक ध्यान के साथ देखता है। गजमद 'अरे रे रे!' का व्याकुल चीत्कार करता है। वृद्ध के मुख पर हलकी सी मुस्कान आती है। वह नाटों की भीड़ में आ जाता है। समय—सन्ध्या के उपरान्त का झुटपुटा।]

वृद्ध—सब कितने हैं और कहां हैं?

(गजमद उस भाषा का एक अक्षर भी नहीं समझ पाता)

अधेड़ अवस्था का एक नाटा—(एक एक उंगली करके चार उंगलियों तक गिनाता हुआ) टापू के उस छोर पर हैं। उनको भी बाँधकर लाया जारहा है।

वृद्ध—हृष्ट पुष्ट हैं या इस सरीखे दुर्बल?

अधेड़ नाटा—(*हाथों का माप बनाकर और दो उंगलियों को उठाकर*) दो बहुत मोटे हैं और दो ऐसे ही मरियल।

(*वह गजमद की ओर सङ्केत करता है। भाषा तो उसकी समझ में नहीं आई, परन्तु आँख के भयावनेपन, जलती हुई आंच और उस भीड़ के विलक्षण चेहरों को देखकर वह कल्पना करता है कि कोई बहुत बड़ा सङ्कट सिर पर टूटने ही वाला है।*)

वृद्ध—देवी कहाँ हैं ?

(*देवी के नाम पर अधेड़ अपने दोनों हाथों को ऊँचा करके, नवते हुये सिर के साथ, आगे झुका देता है। अन्य द्वीप निवासी सिर नीचा कर लेते हैं।*)

अधेड़—(*सिर नीचा किये ही, एक दिशा में हाथ पसारता है।*)

वृद्ध—पाथमें बहुत से गए हैं न ?

अधेड़—हाँ।

भीड़ में से कुछ—इसको जलादो ! इसको जलादो !!

वृद्ध—थोड़ा ठहरो तूम्बी कहाँ है ?

अधेड़—(*दूसरी दिशा में हाथ पसार कर*) वहा बहुत सों के साथ।

(*गजमद उन लोगों के हाथ उठाने सिर नवाने और फिर सीधे खड़े होकर उसको जलती सी आँखों देखने से सहम सहम जाता है। कहता है—'हे यमराज ! धीरे धीरे मत आओ। अविलम्ब आकर मेरी पीड़ा का हरण करो !' वृद्ध यमराज के शब्द को सुनकर एक क्षण उसको देखता है। गजमद सोचता है वृद्ध कदाचित मेरी भाषा को समझले।*)

गजमद—(*झटका खाते हुये*) वृद्ध ऋषि, मैं बन्धनों की पीड़ा के कारण मरा जारहा हूं। भूख न्यारी लग रही है। इन लोगों ने थोड़े से ही फल खिलाए थे।

(वे सब हँस पड़ते हैं और हा हू ही हो करते हैं)

गजमद—हे सज्जनो, छोटे आकार प्रकार और कृष्ण काया के होते हुए भी तुम्हारे कुञ्चित केश कहते हैं कि तुम मुझको और अधिक दुःख नहीं दोगे। दया करो मेरे ऊपर।

वृद्ध—चुप करो इसको!

(वे लाठियाँ लेकर गजमद पर पिलते हैं। वह डर के मारे आंखें मूँद लेता है। सहम के कारण उसकी घिग्घी बँध जाती है।)

वृद्ध—अभी मारो मत, पीछे हट आओ।

(वे सब पीछे हट आते हैं)

(जङ्गल में एक ओर से कोलाहल होता आ रहा है। वृद्ध और उसके जन उत्सुकता के साथ उसी दिशा में देखने लगते हैं। जैसे जैसे कोलाहल निकट आता जाता है उसके शब्द स्पष्ट होते जाते हैं—है वे 'हा हू ही हो।' कुछ क्षण पीछे लक्कड़ों से लताओं द्वारा बांधे हुये चन्द्रस्वामी को द्वीप वासी लाते हैं और खड़ा करने के पहले भूमि पर पटक देते हैं। वह कराह उठता है। उसकी कराह को सुनकर गजमद आँखें खोलता है और चन्द्रस्वामी को देखकर उसको कुछ सन्तोष होता है—एक से दो समदुःखी तो हुये। द्वीपस्वामी लक्कड़ से बँधे हुये चन्द्रस्वामी को लक्कड़ समेत उठाकर एक निकटवर्ती वृक्ष से टिका देते हैं। वे सब आग के चक्कर काट काटकर उसी प्रकार नृत्य और गान करते है। चंद्रस्वामी को वृद्ध पास जाकर देखता है। उसके साथ अधेड़ भी।)

वृद्ध—यह मोटा है।

अधेड़—*(प्रसन्न होकर)* हाँ।

(अधेड़ चन्द्रस्वामी के हाथ पैर और तोंद को टटोलता है। चन्द्रस्वामी व्याकुलता के साथ हड़बड़ाता है।)

गजमद—श्रेष्ठी, हम तो अपने किये का पा रहे हैं, परन्तु तुमने कौन से पाप किये थे जिनके कारण तुम बांधे गये?

चन्द्रस्वामी—(उसको पहिचानकर, चकित) गजमद ! तुम भी यहाँ !!

गजमद—हां । क्या तुमको दिखलाई नहीं पड़ता है ?

चन्द्रस्वामी—तुम दिखलाई पड़ रहे हो, और यह सब दिखलाई पड़ रहा है । जानते हो क्या हो रहा है और क्या होने वाला है ?

गजमद—तुम जानते हो ? बतलाओ श्रेष्ठी, बतलाओ ।

चन्द्रस्वामी—ये सब मनुष्य-भक्षी वन-मानस हैं । आगी के चक्कर लगा लगाकर हम तुमको अभी मारकर खाये जाते हैं ।

गजमद—हे भगवान् शङ्कर ! हमारे देश में नरमेध नहीं होता है यहाँ कराने लगे !! हाय !!! हाय !!!! हाय !!!!! तुमने कैसे जाना श्रेष्ठी ?

चन्द्रस्वामी—मैं इनको जानता हूँ । इनकी भाषा भी थोड़ी सी आती है, याचना करूँगा ।

गजमद—तो अब परलोक जाने के पहले थोड़ी सी प्रार्थना कर लेनी चाहिये । इसके भी पहले एक बात पूछता हूं श्रेष्ठी, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो तुमने फँसवाकर मुझे इस दुर्गति को पहुँचाया ?

चन्द्रस्वामी—हाँ मैंने ही तुम्हारा सब कुछ बिगाड़ा था जो ऐसे पापियों को अपने पोत पर चढ़ाकर ले आना पड़ा और अब मारा जाने वाला हूं ! सब सम्पत्ति गई और अब प्राण भी जाने वाले हैं !!

(जङ्गल के पीछे एक अन्य दिशा में फिर कोलाहल होता है । फिर वही 'हा हू ही हो' का शब्द । अब की बार डंडों की ठोकरों के ताल पर । द्वीप वाले दो लकड़ों पर महानाविक को लताओं से बाँधे लाते हैं । इन्हीं के बीच में धारा है । धारा बहुत सुन्दर युवती है, लम्बी छरेरी । बड़ी आंखों और बिखरे लम्बे केशों वाली जो घुँघराले नहीं हैं । उसके तन पर लज्जा निवारण के लिये पत्ते इत्यादि हैं । गले में और हाथों में उसी प्रकार के आभूषण पहिने है, जैसे द्वीप निवासिनी अन्य स्त्रियां । द्वीप निवासिनियों का रंग भँवर जैसा काला है । धारा थोड़ा सांवलापन लिये गोरी है । उसके

एक हाथ में मोटा छोटा डण्डा हैं। जैसे ही वह इस स्थान पर आती है नृत्य गान बन्द हो जाता है और द्वीप निवासी उसको दोनों हाथ उठाकर और माथे के साथ, आगे समानान्तर नवा कर प्रणाम करते हैं। धारा डंडे के संकेत से बँधे हुये महानाविक को एक वृक्ष से टिकवा देती है जो गजमद के पार्श्व में है। वृद्ध महानाविक को पास से देखकर चिल्लाकर कहता है, 'यह भी मोटा है।')

वृद्ध—(धारा से) और कहाँ हैं ? कहाँ मिले ?

धारा—लाये जा रहे हैं। अलग अलग स्थानों पर मिले।

वृद्ध—द्वीप निवासी नरमेध यज्ञ के लिये व्याकुल हैं। कब तक आजायेंगे वे सब ?

धारा—आते ही होंगे। जब सब इकट्ठे हो जायँगे तभी ये लोग यज्ञ कर पावेंगे।

(एक द्वीपवासी आता है)

द्वीपवासी—(समुद्र की दिशा में हाथ उठाकर द्वीप की भाषा में) वहाँ एक बड़ा पोत डूबता हुआ आ रहा है।

धारा—(उसी भाषा में) चिन्ता मत करो। डूब जायगा।

(द्वीपवासी धारा का संकेत पाकर फिर वही नृत्य और गान कर उठते हैं।अबकी बार और भी उत्साह के साथ। महानाविक धीरे धीरे अपनी पाशों को सतर्कता के साथ ढीला करने लगता है।)

गजमद—(महानाविक को पहिचान कर) अरे ! तुम भी पकड़े आये !! हाय !!! हाय !!!! सब एक साथ ही मार दिये जायेंगे !!!!!

महानाविक—एक साथ नहीं, एक एक करके। मैं इनको जानता हूं।

गजमद—श्रेष्ठी उस पेड़ से टिका है। वह रहा। तुम दोनों इन अघोरियों की भाषा को जानते हो। मुक्ति के लिये प्रार्थना करो। कह दो कि पल्टे में कहीं का आधा राज्य दे देंगे।

महानाविक—मूर्ख बकवादी ! चुप रह !!

(गजमद हाय सांस भर कर चुप रह जाता है)

चन्द्रस्वामी—मुक्ति का क्या कोई उपाय है ?

महानाविक—है। भगवान को भजो।

चन्द्रस्वामी—उसके अतिरिक्त भी कुछ ? शीघ्र कोई उपाय निकालो अन्यथा मारे जाओगे।

महानाविक—कहीं भी मरा—समुद्र में जल समाधि ली या भूमि पर अग्नि-समाधि। एक ही बात। मेरी चिन्ता मत करो।

चन्द्रस्वामी—मेरी चिन्ता तो करो।

महानाविक—बक बक मत करो ! चुप रहो !!

(महानाविक लता बन्धनों को शिथिल करता जाता है)

धारा—(*वृद्ध से*) देखो, उधर से कुछ और आ रहे हैं।

(जंगल के पीछे से एक ओर दिशा में कोलाहल होता चला आता है। कुछ क्षण उपरान्त कोलाहल निकट आजाता है। वहीं 'हा हू ही हो।' कुछ द्वीप निवासी लता के बंधन से बांधे हुये अश्वतुंग को लाते हैं। इनके साथ तूम्बी है, छोटे क़द की तगड़ी द्वीप निवासिनी। इसके आ जाने पर नृत्य गान फिर बन्द हो जाता है।

धारा—(*तूम्बी से*) और कहाँ हैं ?

तूम्बी—लाये जा रहे हैं। एक बड़ी नाव उस छोटी पहाड़ी के दुबीचे में किनारे आ लगी है, आधी डूबी हुई है, उसमें कोई नहीं है।

(महानाविक इस वार्ता को सुन लेता है और समझ लेता है। धारा के संकेत पर अश्वतुंग को गजमद के दूसरे पार्श्व में एक पेड़ से टिका दिया जाता है। धारा उसको निकट से देखती है।)

धारा—(*तूम्बी से*) इसको फल खिला दिये गये।

तूम्बी—हाँ खिला दिये गये। बहुत भूखा था। बहुत खाये। पानी भी पिला दिया।

(धारा उसको ध्यान के साथ देखती है। वह भी उसको देखकर नेत्र मूंद लेता है)

तूम्बी—इतनों का यज्ञ कर लिया जाय ? फिर दूसरों का हो ?

धारा—अभी नहीं। सबको बटोर लेने दो।

(धारा महानाविक को देखती है। वह निश्चल है। गजमद और चंद्रस्वामी फड़फड़ा रहे हैं। धारा अश्वतुङ्ग को आंख गड़ा कर देखती हुई वृद्ध के पास तूम्बी के साथ आ जाती है। नृत्य गान के लिये डंडे द्वारा संकेत करती है। नृत्य गान पूर्ववत हो उठता है। महानाविक अपनी पाशों को ढीला करने में व्यस्त हो जाता है। गजमद अश्वतुंग को पहिचान लेता है।)

गजमद—*(अश्वतुङ्ग से)* महाराजकुमार अन्तिम क्षण आ रहे हैं! हाय !! हाय !!!

अश्वतुङ्ग—महाराजकुमार मत कहो—

(धारा फिर अश्वतुङ्ग के पास कुछ फल लेकर आती है और फलों को उसके सामने नचाकर सङ्केत करती है—मानो पूछ रही हो, 'और खाओगे ? भूखे हो ?'

गजमद—महाराजकुमार, महाराजकुमार ले लो ये फल—

('महाराजकुमार' के शब्द पर धारा चौंकती है और ध्यान के साथ उसको देखती है। अश्वतुङ्ग नाहीं का सिर हिलाता है।)

गजमद—मुझे ही दिलवादो, वे फल। जठराग्नि प्रज्वलित हो रही है। महाराजकुमार, मरने के पहले पेट तो भरलूँ भली भांति।

अश्वतुङ्ग—महाराजकुमार मत कहो, महामूर्ख कहो।

गजमद—अच्छा महामूर्ख ! दिलवादो कुछ खाने को।

(धारा फल लेकर चली जाती है। महानाविक बन्धनों को शिथिल करके तोड़ने में व्यस्त है)

गजमद—यह महानाविक है। तुम्हारे उस पार्श्व में चन्द्रस्वामी श्रेष्ठी है। ये लोग इनकी भाषा को जानते हैं। इनके द्वारा प्राणों की भिक्षा माँग लो।

अश्वतुंग—तुम्हारी भाषा कहाँ गई ? कविता की भाषा ?

गजमद—भाड़ में गई भाषा। जानते हो क्या होने वाला है ? ये लोग हमको तुमको, सबको, मार कर खा जाने वाले हैं।

अश्वतुंग—मुझको तो हँसी आ रही है। न हँसूं तो रो पडूँगा। एक बार इन सब पर हँसलूँ फिर अपने ऊपर हँसूँगा। वाह ! क्या सुन्दर स्वच्छ रङ्ग है ! कैसी सुये की जैसी नाक है !! केवल एक को छोड़कर जो अभी अभी फलों को मेरे मुँह में ठूँस डालने के लिये आई थी। और वह देखो, दूरी पर उस वृद्ध रीछ को ! यह गान !! वह नृत्य !!! भरत मुनि भी पछाड़ खा जायँ !!!! सुरीलेपन की सीमा ही नहीं दिखलाई पड़ती। ह ! ह !! ह !!! ह !!!! ह !!!!! (*बहुत हँसता है। धारा द्रुतगति से आती है और उसको तड़ाक तड़ाक से दो चाँटे लगाती है। अश्वतुङ्ग छटपटाकर और आँखें फैलाकर रह जाता है। वह चली जाती है। महानाविक स्तब्ध है।*)

गजमद—हे भगवान शङ्कर मुझको बचाना !

चन्द्रस्वामी—हे भगवान अविलोकितेश्वर ! हे भगवान शङ्कर !!

(*उसी प्रकार का कोलाहल करते हुये कुछ और द्वीपवासी दो माझियों को उसी भांति बाँधे हुये लाते हैं और उनको एक ओर नीचे रख देते हैं। नृत्य-गान चलता रहता है।*)

वृद्ध—(*इन नवागन्तुकों से*) और कोई ?

नवागन्तुक—हाँ।

गजमद—(*चन्द्रस्वामी से*) ये लोग क्या कह रहे हैं ?

चन्द्रस्वामी—तुम्हारा सिर !

अश्वतुंग—चिता समाधि के क्रम में प्रथम पद तुम्हारा रहेगा यह कह रहे हैं वे लोग।

गजमद—या श्रेष्ठी का ?

चन्द्रस्वामी—तुम दोनों का ।

अश्वतुङ्ग—मेरा तो सत्कार हो गया ।

गजमद—और हँसो ! हँसो न !!

अश्वतुङ्ग—अब अपने पर हँसूँगा; दूसरों पर नहीं हँसूँगा, अपने पर हँसूँगा । इन बन्धनों और उन चाँटों की अपेक्षा चिता की लौ के साथ हँसना बहुत अच्छा रहेगा । जो अवश्यम्भावी और अनिवार्य है उसके लिये रोना क्या ?

(महानाविक पाशों को शिथिल कर चुका है । उसके हाथ स्वतन्त्र हो गये हैं । हाथों और दांतों की सहायता से वह ऊपर की पाशों को काट डालता है । फिर धीरे से एक पैर को मुक्त करता है । एक हाथ से लक्कड़ को साधकर दूसरे पैर को निकाल कर अबाधगति से जङ्गल की ओर भागता है । उसके भागने के कुछ क्षण उपरांत ही द्वीप वासी देख लेते हैं । हड़बड़ी मच जाती है । वे कुछ जलते हुये लूघरों को लेकर धारा और वृद्ध के निकट आते हैं । वे दोनों चन्द्रस्वामी, अश्वतुङ्ग और गजमद का लूघरों के उजाले में निरीक्षण करते हैं)

धारा—(*वृद्ध से*) तुम उस दिशा में कुछ को लेकर जाओ । मैं इन वन्दियों की रखवाली के लिये यहाँ खड़ी हूँ ।

(वृद्ध कुछ द्वीप-वासियों को लेकर जाता है । वे दो नाविक भी अपने अपने बन्धन तोड़ने में लग जाते हैं)

धारा—(*तूम्बी से*) तुम इस दिशा में कुछ को लेकर जाओ ।

(तूम्बी अनेक द्वीप--वासियों को लेकर दूसरी दिशा में जाती है ।)

(धारा लूघरों के उजाले में अश्वतुङ्ग को ध्यान के साथ देखती है । वह आंखें बन्द कर लेता है । धारा उसकी मान्सल भुज पेशियों को उंगलियों से टटोलती है । वक्ष और गालों को उसी प्रकार उंगलियाँ गड़ा गड़ाकर । अश्वतुङ्ग आंखें खोल खोलकर मींच मींच

लेता है। धारा उसकी नाक पर उंगली फेर कर हिलाती है, फिर अपनी नाक पर फेरती है मानो किसी सादृश्य को तौल रही हो। इसके उपरान्त गजमद पर दृष्टि मात्र डालकर ग्लानि सी व्यक्त करती है। फिर चन्द्रस्वामी का परीक्षण करती। इसके परीक्षण--क्रम में पेट पर थपकियां लगाती है जिससे भम्म भम्म का शब्द होता है। उसी समय जलता लूवर लिये हुये एक द्वीपवासी आता है। द्वीप की भाषा में कहता है कि एक पोत पहाड़ी के नीचे किनारे आ लगा है। धारा उससे कहती है कि जाकर वृद्ध को सूचना दे दो। वह चला जाता है। धारा चन्द्रस्वामी का निरीक्षण करती रहती है।)

चन्द्रस्वामी—हे भगवान् शङ्कर, विष्णु, ब्रह्मा, अविलोकितेश्वर, देवी, महादेवी! रक्षा करो!! रक्षा करो!!!

धारा—शङ्कर! विष्णु!!

चन्द्रस्वामी—अरे! आप हमारी भाषा को भी जानती हैं!!

धारा—शंङ्कर, विष्णु, देवी।

गजमद—महाराजकुमार! आप इस देवी से प्राण-रक्षा की याचना कीजिए।

धारा—महाराजकुमार! महाराजकुमार!!

अश्वतुंग—था, अब नहीं हूँ।

(धारा फिर उसके निकट जाती है)

धारा—महाराजकुमार!

गजमद—कहदो, कहदो कि हूं। वह आपको प्यार करती दिखती है।

अश्वतुंग—मूर्ख! मुझको नहीं मेरे मान्ध को। परन्तु वह हमारी भाषा के कुछ शब्द तो अवश्य जानती दिखती है।

गजमद—तो कहिए न। प्राकृत में बोलिए। पल्लवों की भाषा में। महाराजकुमार! हाथ जोड़ता हूँ।

धारा—पल्लव! महाराजकुमार!!

चन्द्रस्वामी—बोलो, बोलो, महाराजकुमार, प्राकृत में बोलो। मुझको क्षमा करो! प्राणों को बचाओ। आप बचा सकते हैं। मैं—मैं—कभी नहीं भूलूँगा।

अश्वतुंग—देवी! भारती सन्तति?

धारा—हुँ! भारती संतति। हूँ!!

अश्वतुंग—इनको छोड़ दीजिये और मुझको खा लीजिये।

चन्द्रस्वामी—भक्षण कहो, भक्षण या संस्कृत का कोई तद्भव शब्द।

धारा—महाराजकुमार!

अश्वतुंग—हाँ हाँ, नाम अश्वतुङ्ग या अश्वपुच्छ।
(अन्तिम शब्द को धीमें स्वर में कहता है।)

धारा—महाराजकुमार अश्वतुङ्ग पौ‥ल्ल‥‥वा हुँ।

अश्वतुंग—हां हां यही, परन्तु पौल्लवा नहीं पल्लव।

धारा—पल्लव—महाराजकुमार पल्लव।

अश्वतुंग—बन्धनमुक्त करो देवी।

धारा—बन्धन मुक्त न। *(हाथ से प्रतीक्षा करने का संकेत करती है।)*

अश्वतंग—उस पेट वाले को छोड़ दो, देवी।

धारा—देवी! हुँ!!

चन्द्रस्वामी—अरे महाराज कुमार आन्ध्र की भाषा में मत बोलो। दया करो मेरे ऊपर। प्राकृत में बोलो। यह चण्डी भारती सन्तति है। द्रवित हो जावेगी।

अश्वतुंग—यह मागधी बोली को जानती होगी। पर मैं नहीं जानता। प्रतीक्षा के लिये सङ्केत कर रही है। अकुलाओ मत। ठहरो। बुड्ढे को लौट आने दो।

चन्द्रस्वामी—उस मूर्ख महानाविक ने सब चौपट कर दिया! थोड़ा और ठहर जाता, अभागा कहीं का! मेरा पेट फटा जा रहा है बन्धनों की जकड़ के मारे!!

अश्वतुंग—(*धीमे स्वर में, जिसको चन्द्रस्वामी नहीं सुन पाता है, परन्तु गजमद सुन लेता है*) थोड़ा सा कम होजाय तो क्या बुरा।

गजमद—धन्य हो ! देवी, धन्य हो !!

धारा—देवी, हुं ! देवी । हुं !! (*इस बीच में वे दो नाविक भी बंधन खोलकर भाग जाते हैं*)—[*धारा संकेत में अपने निकटवर्ती द्वीप वासियों में से कुछ को पीछा करने के लिये भेजती है।*]

चौथा दृश्य

[*स्थान—उसी द्वीप का दूसरा वनखण्ड जो समुद्र के किनारे के पास है। जङ्गल के अन्य भागो में चिल्लपुकार मची हुई है। जलते हुये लूघरों के प्रकाश के झपके इधर उधर दिखते हैं और विलीन हो जाते हैं। समुद्र-शांत है। किनारे पर टिका हुआ जल पोत खड़ा है। पानी भर आने के कारण अधडूबा है, परन्तु उसमें छेद नहीं हैं इसलिये वह डूब नहीं रहा है। छिपता दौड़ता हुआ महानाविक आता है। समय-रात्रि।*]

महानाविक—अहा ! धन्य वरुण देवता !! तुमने हमारे ही लिये यान को यहाँ भेज दिया है !!! (*समुद्र तट पर पड़े हुये ढेले को उठाकर पोत के पार्श्व पर मारता है। धीमें स्वर में*) यान पर कोई है ?

(*कोई उत्तर नहीं पाता है। पीछे से दौड़ते हुये कुछ लोगों की पद-चाप का शब्द सुनाई पड़ता है। महानाविक एक तटवर्ती चट्टान के पीछे छिप जाता है। यान की ओर तीन नाविक दौड़ते हुये आते हैं। पानी के पास खड़े हो जाते हैं।*)

एक नाविक—(*हांफता हुआ*) पानी में कूदकर यान पर चढ़ जावें।

दूसरा—(*हाँफता हुआ*) बहुत ऊँचा है, कैसे ?

(चट्टान के पीछे से महानाविक आता है। उसको पहिचान न पाकर उन तीनों के मुँह से 'उई ! उई !!' शब्द निकल पड़ता है।)

महानाविक—धीरज धरो। मरे मत जाओ। यान पर चढ़ने का उपाय हो जायगा। वहाँ से कैसे बचकर निकल पाये ?

(वे लोग महानाविक को चीन्ह लेते हैं)

एक नाविक—वहाँ से कहाँ से ? हम लोगों को समुद्र में एक छोटी उल्टी हुई नाव मिल गई, वह तट तक ले आई। जङ्गल में गये। खाने को फल और पीने को मीठा पानी मिल गया। रात बिता ली। दिन में हो हल्ला सुनकर छिपते-लुकते समुद्र तट की ओर आए, एक ऊँचे पेड़ पर चढ़ गये। वहां से अपने पोत को तट पर लगा देख लिया। यहां के बर्बर उस समय यहाँ आसपास घूम रहे थे। जब वे चले गये सन्ध्या की वेला बड़ा कोलाहल मचा। एक घड़ी पहले जब कोलाहल कुछ शान्त हुआ तब पेड़ से नीचे उतरे तो इन लूघरों के चलते फिरते प्रकाश बिन्दुओं को देखा। समझ गये कि द्वीप-निवासी किसी की पकड़-धकड़ की धुन में हैं, इसलिये अपने यान की दिशा में दौड़ आये। अब बतलाओ महानाविक क्या किया जाय ?

(वे दो नाविक भी दौड़ते हाँफते आते हैं। पहले तो सब एक दूसरे को पहिचान न पाकर घबराते हैं। फिर पहचानने में विलम्ब नहीं लगता। दोनों नवागन्तुक कुछ कहना चाहते हैं। महानाविक संकेत द्वारा रोक देता है।)

महानाविक—(*शीघ्रता से*) कूद पड़ो पानी में और लगा जाओ प्राणों की होड़ ! साहस की नसेनी बनाकर यान पर चढ़ जाओ !! समुद्र में डूब मरे तो अपनी निर्दिष्ट जल-समाधि को पा गये। (*कान लगाकर*) देखो ! उधर से बर्बर आरहे हैं ! यदि इन्होंने पकड़ लिया तो जलती हुई चिताओं पर जीते जी अग्नि समाधि लेनी पड़ेगी। कूद पड़ो पानी में !

यान रेत पर टिका हुआ है। पार्श्व के पटियों के कगर और लोहे की कीलों का जड़ाव चढ़ने में सहायक होगा। चलो !

(महानाविक पहले कूद पड़ता है, फिर वे तीनों नाविक। कुछ क्षण पीछे सब अदृश्य हो जाते हैं। जलते हुये लूघर लिये कुछ द्वीप वासी तट पर आजाते हैं। इस दल में द्वीप-निवासियों का वृद्ध भी है।)

वृद्ध—यहाँ तो आया नहीं जान पड़ता वह। रेती में पद चिन्हों को देखो।

(लूघर के उजाले में रेती का निरीक्षण करते हैं। उस पर पद--चिन्ह अंकित हैं)

एक द्वीप वासी—पद्-चिन्ह हैं। बहुत से हैं।

द्वीप निवासी—बहुत से (*'वह तीन उँगलियों को उठाकर बहुत से' का अर्थ-वाची संकेत करता है, स्पष्ट है कि वह तीन से अधिक की संख्या नहीं जानता)*

वृद्ध—*(दृष्टि निर्बल होने के कारण झुककर पास से निरीक्षण करके)* हाँ बहुत से हैं। देखो, यहीं कहीं होंगे। इन चट्टानों के पीछे देखो !

(वे सब चट्टानों के पीछे जा जाकर सूक्ष्मता के साथ परख करते हैं, परन्तु वहाँ किसी को नहीं पाते। जहां पद चिन्हों को देखा था, वहीं लौट आते हैं।)

एक द्वीप निवासी—*(जलयान की ओर हाथ उठाकर)* इसमें न चढ़ गये हों। पदचिन्हों से अनुमान होता है कि बहुत मोटे मोटे होंगे।

वृद्ध—कूद पड़ो पानी में और चढ़ जाओ पोत के ऊपर।

एक द्वीप निवासी—लतायें तोड़ लाऊँ, पोत बहुत बहुत ऊँचा है।

(उनमें से कुछ जङ्गल में धस जाते हैं। जलयान के भीतर से आहट आती है।)

वृद्ध—वे लोग इसी में हैं ! पोत यहाँ से हिल नहीं सकता। बहुत नहीं हैं वे लोग। केवल चार हैं।

द्वीप निवासी—(*चार की गिनती न जानने के कारण*) बहुत हैं, बहुत हैं।

(*वृद्ध तीन उंगलियों को दिखलाकर एक उंगली को ओर उठाता है।*)

वृद्ध—इतने।

द्वीप निवासी—हां, हां इतने बहुत।

(*जलयान के ऊपरी खण्ड पर एक नाविक दिखलाई पड़ता है।*)

एक द्वीपवासी—वह है पोत पर ! वह है एक !!

वृद्ध—मुझको नहीं दिखलाई पड़ता। छोड़ो उस पर तीर।

(*द्वीपवासी तीर छोड़ता है। तीर छोड़ने के पहले यान पर खड़ा हुआ नाविक तट पर होने वाले लूघर के प्रकाश में द्वीपवासी को कमान पर तीर चढ़ाते हुये देख लेता है और ओट पकड़ लेता है। तीर ठीक उस स्थान पर से, जहां नाविक खड़ा था, होता हुआ मस्तूल के मोटे काठ से जा टकराता है।*)

(*महानाविक यान के ऊपरी खण्ड के एक भाग पर ओट लिये आ जाता है। वह दिखलाई नहीं पड़ता है।*)

महानाविक का कण्ठस्वर—ले लो धनुष और लोहे के तीखे तीर। मैं भी सन्नद्ध हूं; शङ्कर भगवान की कृपा से हमारे शस्त्र डूबने से बच गये।

(*समुद्र-तट पर कुछ द्वीप-निवासी बेलें लिये हुये आते हैं।*)

वृद्ध—कूद पड़ो। पोत के भीतर ही हैं, वे सब। बेलों की सहायता से चढ़ जाओ ऊपर और पकड़ लाओ सबों को, फिर इनका बलिदान कर दो। जाओ !

महानाविक—(*यान के भीतर से*) मैं इस बुड्ढे पिशाच को देखता हूँ, तुम लोग इन वनमानसों को समझो।

(महानाविक वृद्ध का लक्ष्य करके शर--सन्धान करता है। उसके आसपास लूवरों का उजाला होने के कारण लक्ष्य पर तीर बैठता है और वृद्ध 'शंकर' शब्द का उच्चारण करके गिर पड़ता है। दूसरे नाविकों के तीर अन्य द्वीप-वासियों पर पड़ते हैं। एक धराशायी हो जाता है, दो घायल होकर चट्टान की ओट में चले जाते हैं। शेष भागते हैं। सिसगते हुये लूवर रेती पर पड़े रह जाते हैं। घायल लूवरों के पास छटपटाते हैं। वृद्ध का प्राणान्त होता है। महानाविक और उसके साथी धीरे धीरे यान के घेरे के ऊपर सिर निकालते हैं।)

एक नाविक—इन घायलों को भी समाप्त कर देना चाहिये।

महानाविक—नहीं रे। मरणासन्न घायलों पर शरसन्धान नहीं किया जाता। तुरन्त नीचे चलो और पानी को उलीच डालो। यान को यहाँ से हटा लेना चाहिये।

(वे नीचे चले जाते हैं। पानी के उलीचने का शब्द होता रहता है। थोड़े समय उपरान्त लूवरों को लिये हुये द्वीप वासियों की एक बड़ी भीड़ आजाती है। वे अपने बांस के तीरों को यान के पार्श्व और घेरे के ऊपरी भाग के ऊपर छोड़ते हैं। यान पर से इसका प्रत्युत्तर नहीं दिया जाता है। पानी और भी अधिक वेग के साथ उलीचा जाने लगता है।)

एक द्वीपवासी—कूद पड़ो पानी में और चढ़ जाओ यान पर!

दूसरा—*(वृद्ध को मरा हुआ देखकर और लोहे के तीर पर विशेष ध्यान केन्द्रित करके)* यह मारे गये जो कभी नहीं मारे गये थे और न मारे जा सकते थे। इनके सामने कितने मर चुके हैं! और यह तीर!! विकट पत्थर का बना हुआ!!! यान पर चढ़ते ही सब मारे जाओगे। वृद्ध और इन घायलों को लेकर चलो देवी के पास! वे कुछ चाहें तो करें।

(वृद्ध के शव, घायलों को और लूघरों को लेकर वे सब चले जाते हैं ।)

(उन सबके चले जाने की आहट पाकर महानाविक और उसके साथी यान के घेरे पर आ जाते हैं ।)

महानाविक—ये अपनी उस देवी—चण्डी— के पास गये है। उसको लेकर बड़ी संख्या में आवेंगे । सम्भव है उन तीनों का बलिदान करके खापीकर लोटें। यह नाग द्वीप नहीं है, नरक द्वीप है। मैं इसी नाम से पुकारता हूँ इसको । पानी को उलीच डालो अब बहुत नहीं है, और अब चलदो।

(वे सब यान के नीचे जाकर पानी उलीचने मे लग जाते है । यान धीरे धीरे ऊपर को उठता है। महानाविक ऊपर आता है और आंख पसारता है ।)

महानाविक—*(कान लगाकर सुनता है उसको दूरी पर कोलाहल सुनाई पड़ता है । कोलाहल को सुन कर, यान के भीतर की ओर मुँह करके)* शीघ्र मेरे पट्ठो ! शीघ्र !!

भीतर से—अब तो थोड़ा ही रह गया है ।

(यान कुछ और ऊँचा उठता है। द्वीप के जंगल मे जलते लूघरो के प्रकाश बिन्दु दिखलाई पड़ते है। बड़ी संख्या में द्वीप निवासी तट की ओर आ रहे है ।)

भीतर से—सब पानी फेंक दिया !

महानाविक—डाड़े पकड़ो ! यान को तली से तुरन्त छुटाओ !! अग्नि-समाधि मे अपनी जल-समाधि बहुत भली । शीघ्र ! शीघ्र !!

(नाविक डाँड़ो से पोत को हटाने का प्रयास कर रहे हैं, परन्तु थोड़ा सा ही हिल पाता है ।)

भीतर से—तुम आओ महानाविक ! सहायता करो !!

(महानाविक तिरोहित हो जाता है । द्वीपवासी तट के निकट आ रहे हैं । उनके साथ तूम्बी है । महानाविक का सहयोग पाकर

नाविक यान को हटाने में पूरी शक्ति लगाते हैं। यान झटका खाता है और मोड़ खाकर समुद्र की ओर सरकता है।)

भीतर से—जय शङ्कर की! जय वरुण की!!

(जलयान समुद्र की ओर और भी खिसकता है और फिर तैरने लगता है।)

महानाविक—(*ऊपर आकर*) पतवार मारो! तीव्रता के साथ पतवार मारो!! बर्बर समुद्र तट पर आ गये हैं!!!

(यान समुद्र की ओर चलने लगता है। द्वीपवासी अपने तीरों के सिरे पर द्वीप की कोई जड़ी बांधे हैं जो चर्बी से गीली की गई है। उसको लूखर से प्रज्वलित करते हैं। जब तक लौ बने तबतक जलयान समुद्र की ओर और भी बढ़ जाता है। द्वीपवासी इन आग्नेय वाणों को यान पर चलाते हैं, परन्तु कुछ ही उसके एक पार्श्व-कोण पर जाकर टकराते हैं, शेष ओछे पड़कर जलमग्न हो जाते हैं। कुछ अन्य लम्बे और भारी तीरों को आग्नेय बनाया जाता है। बहुत प्रकाश होता है। यान प्रचुर दूरी पर निकल गया है। प्रकाश के कारण बड़ी बड़ी मछलियां तट के पास पानी के ऊपर तक आ जाती हैं। अधिकांश द्वीपवासी इनको अपने तीरों का लक्ष्य बनाने में व्यस्त हो जाते हैं। नये आग्नेयों को यान पर चलाया जाता है। उनके प्रकाश में उछलता हँसता हुआ महानाविक दिखलाई पड़ता है और उसके पीछे उसके सहयोगी। ये आग्नेय भी यान पर नहीं पहुंचते।)

महानाविक—जलने से बच गये! बड़ी बात हुई!! (*चिल्लाकर*) स्मरण रखना रे पिशाचो! अबकी बार अनेक यानों में असंख्य पल्लव सेना को लाकर तुम्हारे इस नरकद्वीप का विध्वन्स करूँगा!! उई रे!!! उई रे!!!! उई रे!!!!

(यान अदृश्य हो जाता है । द्वीपवासी मछलियों को बटोरकर अपने सब अग्नि दण्डों को लेते हुये बिना कोलाहल के चले जाते हैं ।)

पाँचवां दृश्य

[स्थान—नागद्वीप । उसके भीतरी भाग का एक समतल अंश । इस अंश में एक नाला है, आसपास वन के ऊँचे ऊँचे वृक्ष और समस्थल में जंगली केले के बिरवों के समूह । एक ओर से अश्वतुङ्ग के बिछुड़े हुये कुछ सैनिक आते हैं । इनमें में से कुछ के पास धनुप बाण हैं और कुछ के पास खड़्ग । समय—दिन ।]

एक सैनिक—यहां कहीं भी तो महाराजकुमार का पता नहीं चलता, और न बहुत से लोगों का ।

दूसरा—द्वीप निवासी बौने हमलोगों को देखते ही पहाड़ों में जा छिपते हैं । मिलें भी तो न उनकी भाषा हमारी समझ में आवेगी और न हमारी भाषा उनकी समझ में । न जाने कहाँ होंगे और उनका क्या हुआ होगा ।

एक—चिल्लाते चिल्लाते मेरा तो गला बैठ गया । *(खाँसता है)* निकट ही मीठे पानी का वह नाला है और नाक के नीचे केलों से लदी कदली कुञ्जें । चलो खायें न ?

दूसरा—बहुत खा चुके हो । यह जङ्गली कदली है, कहीं रोग-ग्रस्त न हो जाओ ।

एक—अच्छा भाई । तो अब सोचो उनको कहाँ ढूँढ़ें ।

दूसरा—अभी दोपहर दिन और है । एकाध घड़ी विश्राम करलो । अपने अन्य साथी भी ढूँढ़ते-टकोरते यहीं आ जायँगे । बैठो ।

(वे सब बैठ जाते हैं)

एक—कोई चर्चा छेड़ो ।

दूसरा—करो आरम्भ ।

एक—यहाँ के निवासियों को देखकर लगता है कि पूरा कलियुग छाया हुआ है।

दूसरा—क्या यहाँ कभी सतयुग रहा होगा ?

एक—सतयुग का चिन्ह यह कदली-कुञ्ज और वह नाला हो, तो हो, वैसे तो कोई लक्षण नहीं दिखलाई देता।

दूसरा—जान पड़ता है कि शङ्कर भगवान ने यहाँ पर सृष्टि के क्रम को उलट दिया है—पहले कलियुग फिर सतयुग ! हमलोग यहाँ सतयुग को लेकर आ गये हैं।

एक—बच्चू, यदि किसी मनुष्य-भक्षी द्वीप में डाल दिये गये होते तो न कहते कि सतयुग को साथ लाये हैं।

दूसरा—भगवान शङ्कर उस प्रचण्ड प्रभञ्जन को समुद्र के ऊपर हमलोगों के ही भाग्य से ले आये, नहीं तो अभी तक मनुष्य-भक्षियों ने कभी का समाप्त कर दिया होता। यहाँ के द्वीपवासी भी मनुष्य-भक्षी ही होंगे, परन्तु हमलोगों के शस्त्रों को देखकर सामने नहीं आते, चूहों की भांति छिप जाते हैं।

एक—तुम लोगों को सूझी भी बहुत ! प्राणों पर तो सङ्कट, और तुम लोग लग गये शस्त्रों के संग्रह में डूबते हुये पोत पर !

दूसरा—हमलोगों को नावों में सबसे पीछे स्थान मिलना था। सोचा कदाचित बच गये और किसी मनुष्य-भक्षी समूह में ही पहुँच गये तो आत्मरक्षा का कुछ तो साधन साथ में करलें।

एक—आगे क्या करेंगे यहाँ ?

दूसरा—सतयुग को फैलाते फैलाते कलियुग में उतर आना पड़ेगा, और क्या करेंगे ? कुछ समय उपरान्त शरीर के ये वस्त्र सड़, फट जावेंगे, फिर पत्तों का आच्छादन ग्रहण करेंगे। कभी, जब कभी, कोई पोत यहाँ पर आ निकला, तो किसी दूसरे स्थान में पहुँचने का प्रयत्न करेंगे। अश्वतुङ्ग मिल गये तो फिर जैसा वे कहेंगे, करेंगे।

एक—और कहीं उनको जलसमाधि मिल गई हो तो ? तो हम तुम तो जल-समाधि लेने से रहे। द्वीपवासियों को मित्र बनाने का प्रयत्न करेंगे। गृहस्थी बनायेंगे, खेती-पाती करेंगे !

दूसरा—खेती-पाती ! बीज गाँठ में नहीं, खेती काहे की करोगे ?

एक—द्वीप में अनुसन्धान करेंगे। यदि कहीं जङ्गली जाति का धान्य मिल गया तो उसको बढ़ायेंगे। परन्तु अभी से क्यों भविष्य की इतनी चिन्ता में पड़ते हो ? द्वीप में केले हैं और भी अन्य प्रकार के फल हैं। आग मिल ही जायगी।

दूसरा—और यदि द्वीप निवासी मित्र न बने तो ?

एक—तो शस्त्रों द्वारा पराभूत करके उनको अपनी प्रजा बना लेंगे। निपट असभ्य हैं।

दूसरा—यहाँ के निवासी दिन में आग के जलते लक्कड़ लिये घूमते फिरते हैं !

एक—जान पड़ता है कि वे पत्थर से आग का उत्पन्न करना नहीं जानते, यद्यपि यहां कठोर पत्थरों की कमी नहीं है।

दूसरा—तो अब चलें न आगे ? विश्राम कर लिया।

एक—थोड़ा सा और ठहरे रहो। कहीं अपने साथी दूरी पर न छूट जायँ।

दूसरा—कहीं हम अपने इन साथियों से भी हाथ न धो बैठें। आहट लेते हुये चलो।

(वे सब जाते हैं)

छटवां दृश्य

[स्थान—नागद्वीप समूह का वह द्वीप जहां अश्वतुङ्ग इत्यादि पहुंचे थे; और उस द्वीप का वह खण्ड जहां अश्वतुङ्ग इत्यादि बांधकर लाये गये थे। अश्वतुङ्ग, गजमद और चन्द्रस्वामी के एक एक पैर में मोटा लक्कड़ सबल लता रज्जुओं से कसा पड़ा है। और

कोई बन्धन नहीं है। अश्वतुङ्ग के चेहरे पर दुर्बलता अधिक नहीं है, आंखों में तेजस्विता कुछ बढ़ गई है। गजमद दुर्बल है। नेत्र हले हुये से। चन्द्रस्वामी का मुंह रूखा सूखा है और तोंद कुछ कम हो गई है। तीनों एक ही पंक्ति में हैं। एक ओर धारा धनुष कन्धे पर डाले और बाणों का मूठा पीठ पर बांधे बैठी है। आसपास और दूर भी द्वीप-वासी पहरा लगाये हुये हैं। उन तीनों के निकट केले के छिलके और अधखाये फल पड़े हैं। पास ही पानी पीने के लिये मिट्टी के पके हुये डबले जिनका आकार प्रकार बहुत भोंड़ा है। दूसरी ओर लक्कड़ सुलग रहे हैं। समय—दिन।]

गजमद—(*चन्द्रस्वामी से*) इस त्रास की समाप्ति कब होगी? पूछो इस चण्डिका से उसी भाषा में।

चन्द्रस्वामी—कई बार पूछ चुका हूं। वह नहीं बतलाती। कहती है, ठहरो।

गजमद—अन्ततः होना क्या है, तुमने कुछ अनुमान लगाया श्रेष्ठी?

अश्वतुंग—होना क्या है, किसी दिन ये सब हमको तुमको मारकर चाट जायेंगे, बस। जब तक जीवन है, कविता करो। तुमको तो न जानें क्यों काठ सा मार गया है।

गजमद—मैं और कविता, दोनों, काल के कठोर, कराल गाल में कवलित होने वाले हैं। कविता कुण्ठित हो गई है।

अश्वतुंग—कविता का प्रारम्भ तो हुआ। मैं कहता हूं मृत्यु एक दिन अवश्यम्भावी है! सुनते हैं केवल योगी स्वेच्छा-मृत्यु मरते हैं। परन्तु हम तुम योगी नहीं हैं। मृत्यु की अनिश्चित तिथि हो तो मन को भय द्वारा पराभूत नहीं होने देती। अब यदि मृत्यु तिथि का बोध हो जाय तो अन्तर क्यों पड़े? इसलिये जब तक जीवन है, हँसो। जब मृत्यु आवे हँसता हुआ पावे।

गजमद—तो हँसो और खाओ चाँटे, निकट ही तो बैठी है भवानी।

(अश्वतुङ्ग सहसा धारा को किञ्चित देखता हुआ मुस्कराता है वह उठकर पास आती है)

गजमद—अबका बार बिना हँसे ही होता है कुछ। आपके भी हाथ स्वतन्त्र हैं। प्रत्युत्तर देना, फिर देखो क्या होता है।

(धारा अश्वतुङ्ग के होंठों पर उँगली फेरती है। मुस्कान के फैलाव को लाने के लिये दोनों हाथों होंठों के दोनो कोनों को पकड़ कर खींचती है। अपने प्रयत्न को कुछ सफल समझकर फिर उसी स्थान पर चली जाती है)

गजमद—यह क्या हुआ? तुमको चाहती मां क्या है?

अश्वतुङ्ग—मेरे दांतों को गिन रही थी, जैसे आपने यहां कृषक जन बैलों के दांतों को माल लेने के पहले गिनते हैं।

(गजमद के होंठों पर मुस्कान आती है। धारा इस मुस्कान को देख लेती है।)

गजमद—तो अब मेरे गिनेगा।

अश्वतुंग—पहले चांटे पड़ेंगे। बैल को पहले ठोक पीट लेते हैं, तब दन्त-गणना होती है।

(धारा उसके निकट नहीं आती)

गजमद—मुझको संदेह हो रहा है। आपके उसके बीच में कुछ तो भी है। प्राकृत भाषा में बात करो। न जाने कहां से सीखे हैं कुछ शब्द उसने।

अश्वतुंग—पहले इस काठ की महामहिम बेड़ी की दी हुई पीड़ा को टांग में उचटा दूं।

(पैर को लौटता पौटता है और हाथ से सहलाता है। तुरन्त पहरे वाले धनुष की प्रत्यन्चा पर वाण को चढ़ाकर लक्ष्य-साधन करते हैं। अश्वतुङ्ग हाथ जोड़ कर व्यक्त करता है कि आकुल होने का कोई कारण नहीं। धारा हाथ उठाकर वर्जित करती है, वे लोग वाणों को हाथ में ले लेते हैं।)

गजमद—प्रणय की प्रथम अवस्था का इसमें तो कोई भी लक्षण नहीं है। आपके प्रयास को देखकर सक्रामक रोग की भांति मुझको भी टाँग में पीड़ा की प्रतीति होने लगी है। अब क्या करूँ ?

चन्द्रस्वामी—देवी से अनुमति ले लो। ले लो न!

अश्वतुंग—बुद्धि अनुभव जन्य है। एक उपाय सूझा है। सुनो। इस दारुण दुर्दान्त दारु-दण्ड को नमस्कार करो। फिर बेलों के इस बंधन को। उनसे कहो, तुमको जितना दुख देना हो दे लो, हमारे भीतर केलों और इन फलों ने पहुँच कर इतनी स्फूर्ति और शक्ति दे दी है कि सहन करेंगे। सोचते रहेंगे मानो कुछ है ही नहीं।

गजमद—मेरा एक कहना मानिये।

अश्वतुङ्ग—एक नहीं दो, परन्तु किसी ऐसी बात के मानने के लिये न कहना जिसमें मुझको फिर चाटे चपेटे खाने पड़ें। एक बात तो स्मरण करो कैसे थे तुम्हारे पिता, पितामह, पूरी वंशावलि का स्मरण करो तो फिर न पीड़ा कसकेगी, न जीवन का मोह और न मृत्यु का भय।

गजमद—यह व्याख्यानशाला नहीं है, महाराजकुमार।

धारा—महाराजकुमार! पल्लव!! पल्लव!!!

गजमद—अब बात करो उससे, तुमसे प्रसन्न है, प्रभावित है।

अश्वतुंग—वह सोच रही है, इस उपाधि वाले का मांस अधिक स्वादमय होगा।

चन्द्रस्वामी—हे भगवन्! रक्षा करो।

अश्वतुङ्ग - रक्षा तो हो ही गई है, अब मेरे और तुम्हारे इस सुन्दर शरीर का, सुन्दर अन्त कैसे हो—रोते रोते सोचो, चाहे हँसते हँसते, पर सोचो इसी को। यदि हँसते हँसते, तो भव्य भावना से भर जाओगे।

चन्द्रस्वामी—आपके हाथ जोड़ता हूँ। महाराजकुमार उससे रक्षा के लिये प्रवदन कीजिये।

अश्वतुङ्ग—जैसे यहां धान्यकटक या पाटलिपुत्र का राज्य हो!

धारा—पाटलिपुत्र! पाटलिपुत्र!!

गजमद—मगध की राजधानी का नाम दुहरा रही है देवी !

धारा—पाटलिपुत्र !

(अश्वतुङ्ग के निकट आकर बैठ जाती है)

गजमद—हाँ, अब महाराजकुमार ।

धारा—महाराजाकुमार पाटलिपुत्र !

अश्वतुंग—न देवी । महाराजकुमार जो था, आन्ध्र के धान्यकटक का । अब वध के लिये बलि-पशु के समान बन्धन भोगी अश्व पुच्छ ।

गजमद—न, न, अश्वतुङ्ग ।

(धारा गजमद की ओर देखती हुई दांत पीसती है । वह भय के मारे सहम जाता है ।

अश्वतुंग—देवी, तुम मगध से आईं क्या यहाँ ?

धारा—(*किन्चित उल्लास के साथ*) मगध, मगध ।

अश्वतुङ्ग—हमारा वध कब किया जायगा ?

(धारा न समझ पाने का सिर हिलाती है)

अश्वतुङ्ग—(*अपनी छाती पर हाथ रख के*) हमारा बलिदान ?

(धारा आकाश की ओर सङ्केत करके पूर्णचन्द्रमा के वृत्त की, उंगलियों के द्वारा उसके चेहरे के पास गोलाकार रेखा बनाती है ।)

अश्वतंग—(*गजमद और चन्द्रस्वामी की ओर हाथ का सङ्केत करके*) इनका ?

(धारा उसी प्रकार की गोलाकार रेखा खींचती है)

अश्वतङ्ग—महाशयगण, आ गया समझ में ? पूर्णिमा की तिथि निश्चित हुई है । दस दिन शेष हैं पूर्णिमा के लिये, अब सब कुछ निर्द्वन्द है ।

धारा—पूर्णिमा, पूर्णिमा ।

अश्वतुंग—इस समाचार के लिये अनेक धन्यवाद देवी ! इतनी लम्बी अवधि क्यों नियुक्त कर छोड़ी है ? क्या हम बलिपशुओं को मोटा करने के हेतु ? आपका भ्रम है, भ्रम है, क्योंकि एक का तो पेट आधा

रह गया है, और दूसरा सूखकर काँटा होता जा रहा है। यह आज्ञा क्यों हो रही है देवी महारानी ज ?

(*धारा मुस्करा जाती है। मुस्कान को इन लोगों ने उसके चेहरे पर पहली बार ही देखा है। मुस्कान जिस द्रुतगति से आई थी उसी से विलीन भी हो जाती है।*)

धारा—(*अपनी छाती पर हाथ रख के*) देवी महारानी ! हुँ !!

अश्वतङ्ग—देखा इस मुस्कान को ! ठीक मौत जैसी मधुर।

चन्द्रस्वामी—आपने कितना उल्टा मार्ग पकड़ा ! करना तो था प्रवदन और पूछ रहे हैं वध की तिथि को !!

अश्वतुंग—मैं तो सोचता हूँ कि आत्म-प्रवन्चना से बढ़कर दूसरा कोई अविवेक नहीं, आत्म-प्रतारणा से बढ़कर और कोई दुःख नहीं और कठिनाइयों पर विजय पाने के आनन्द से बढ़कर कोई सुख नहीं। तुम तो जानते हो इन द्वीप निवासियों की भाषा को थोड़ा बहुत। करो न कोई चर्चा।

चन्द्रस्वामी—(*धारा से*) देवी, मैं यहाँ की भाषा टूटी फूटी सी जानता हूँ। क्षमा करना, पूछता हूँ कि हमारा वध क्यों किया जा रहा है ?

(*धारा कुछ बड़बड़ा डालती है*)

अश्वतंग—इनकी वाणी ने किस विषय की वर्षा की है ?

चन्द्रस्वामी—कहती है कि यहाँ जो कोई आ पड़ता है उसका वध कर दिया जाता है। इस पर मारा गया उसका पिता, इसलिये द्वीप की प्रथा को दृढ़ निश्चय का रूप दे दिया गया है।

अश्वतुंग—तो छुट्टी हुई। परन्तु जब इतना पूछा है तो यह और पूछ लो कि हम लोगों के वध का यह लम्बा मुहूर्त क्यों रख दिया गया है ? महानाविक तो पकड़ा नहीं गया अभी तक, क्या उसके पकड़े जाने तक के लिये यह मुहूर्त शोधा गया है ?

चन्द्रस्वामी—देवी महारानी. पूर्णिमा का समय क्यों नियुक्त किया गया है ?

(*धारा कुछ बड़बड़ाती है जिसमें बलिदान का शब्द कई बार आता है ।*)

अश्वतुंग—क्या धारा प्रवाह है !

धारा—(*अपनी छाती पर ऊंगली रखकर*) धारा ! धारा !! हुं !

अश्वतुंग—अच्छा जी ! देवी का नाम धारा है !! अनायास ही नाम प्राप्त हो गया !!!

धारा—नाम धारा ।

अश्वतुंग—नमस्तुभ्यं देवी महारानी ! नमस्तुभ्यम !! श्रेष्ठी, क्या बतला गया इनका प्रवाह ?

चन्द्रस्वामी—कहती है कि पिता के मारे जाने के दिन से पहली पूर्णिमा तक सूतक या श्राद्ध का समय है । इस बीच में बलिदान नहीं हो सकता है ।

गजमद—तो वध निश्चित है ?

अश्वतुंग—वध न कहो इसको मेरे प्यारे कवि, इसको कहो कि अग्निदेव के सिर पर चढ़कर बोलेंगे हम सब आने वाली शुभ पूर्णिमा के पुण्य पर्व पर जय देवी जी की ! (*अंतिम शब्दों को गाने की ध्वनि में कहता है*)

चन्द्रस्वामी—और कहती है कि महानाविक उस बुड्ढे को मार कर जलयान को खिसका ले गया ! दुष्ट कहीं का !!

अश्वतुंग—सारी सम्पत्ति भी साथ ही ले गया !!! हर, हर, महादेव !!!!

चन्द्रस्वामी—सारी की सारी ढो ले गया । अब कर रहा होगा मन की तरङ्गों पर कहीं विहार ! वह मार डाला गया होता तो बहुत अच्छा होता । अब कहीं भी पकड़ा जाकर मार दिया जाय तो थोड़ा सा प्रायश्चित्त तो हो ही जायगा ।

गजमद—सम्पत्ति को चाहे कोई ले बैठे ?

चन्द्रस्वामी—कोई भी लेले, परन्तु उस नीच के हाथ में तो न रहे। चोर कहीं का !

अश्वतुङ्ग—हाय ! हाय !! थोड़ी सी भी न छोड़ गया इस मनोहर द्वीप में !!! और तुमको इसकी तो पड़ी है क्या कि पोत के अन्य यात्रियों का क्या हुआ !!!!

चन्द्रस्वामी—आपको उपहास सूझ रहा है, महाराजकुमार !

धारा—महाराजकुमार ! पल्लव !! (*सिर को हिलाकर*) धारा नाम, मगधी।

अश्वतुङ्ग—हाँ देवी जी, आपका नाम धारा और आप मगध की हैं। मैं पल्लव वंश का हूँ, परन्तु इससे अधिक बतला पाने की समर्थता मुझमें नहीं है और आपकी भाषा का तो कहना ही क्या ! बलिहारी है !! देवी जी, आपको और आपकी इस कराल सेना को धन्य है। आपका कुछ भी मेरी समझ में नहीं आरहा है, एक महत्वपूर्ण तत्व के अतिरिक्त कि हमारा बलिदान अप्रतिवार्य है। जय हो ! जय हो !!

धारा—जय ! देवी महारानी !! धारा मगधी !!!

(वह उत्साह के साथ उसके पीछे आती है और झकझोर के साथ उसके कन्धों को पकड़ कर बिठा देती है)

अश्वतुङ्ग—लो मैं तो अभी चला। पूर्णिमा की बाट तुम लोग देखो !

(चन्द्रस्वामी और गजमद सचिन्त दृष्टि से अश्वतुङ्ग को देखने लगते हैं। धारा अश्वतुङ्ग के केशों में मनोयोग से उँगलियाँ चलाने लगती है। अश्वतुङ्ग आँखें मूँद लेता है)

अश्वतुंग—पहले मेरा केश-लुन्चन होगा और फिर बलिदान ! जो कुछ भी होना हो, हो।

धारा—(*केशों में द्रुतगति से उँगलियाँ चलाती हुई*) क्रम कीट ! क्रमकीट !!

गजमद—(*चैन की सांस लेकर*) यह कहो ! आपके जुएँ बीने जारहे हैं। अबतो मेरे सन्देह के स्थान को विश्वास पकड़ता जारहा है।

अश्वतुंग—क्या ?

गजमद—आपको चाहती है, यह।

अश्वतुंग—हाँ, हाँ, जैसे चूहे को खिला खिला कर बिल्ली उसको अन्त में आत्मसात कर जाती है, ठीक वैसे ही चाहती होगी मुझको।

(*मेरा बलिदान के शब्दों के साथ अश्वतुङ्ग अपनी छाती पर हाथ रखता है। धारा समझ जाती है और उसके दोनों गालों पर एक एक चाँटा जड़ती है। अश्वतुङ्ग एक क्षण के लिये बिल बिला जाता है, परन्तु तुरन्त ही अपना नियन्त्रण कर लेता है। धारा फिर उसके केशों को नबेड़ने लगती है।*)

अश्वतुंग—मेरी कनपटी के चाँटों का साथ यदि उस बड़ी तोंद के केवल दो थपेड़ों से होजाय तो पखावज के तिन तिन धिरकिट बोल बन जायँ।

चन्द्रस्वामी—मुझको क्या पिटवाना चाहते हो, महाराजकुमार ! क्या अभी तक क्षमा नहीं किया ?

अश्वतुंग—आश्वस्त रहो श्रेष्ठी. वह मेरी बात को किञ्चित भी नहीं समझी। पूर्णिमा तक तुम्हारी तोंद इतनी पिचक जायगी, और मैं इतना मुटापा प्राप्त कर जाऊँगा कि पहले मेरा बलिदान होगा।

(*धारा उछलकर उसके पार्श्व में आजाती है एक हाथ उसकी छाती पर रखती है और दूसरे से उसकी ठोड़ी को पकड़कर हिलाती है*)

धारा—(*अश्वतुङ्ग पर ध्यान को केन्द्रित करके*) बलिदान न, बलिदान, न बलिदान।

(ठोड़ी हिलाने डुलाने की क्रिया से तिलमिला कर उठ बैठता है। उसकी समझ में आ जाता है कि धारा ने उसको अभयदान दिया है, परन्तु जिस उपकरण द्वारा उसको यह अभयदान मिला है वह उससे प्रसन्न नहीं है।)

अश्वतुंग—*(हाथ जोड़ कर)* जय हो देवी महारानी की !

(धारा उसके पास से उतावली सी होकर जाती है। एक पहरेदार से कुछ कहती है। वह बन्दर की भांति उछल पड़ता है, और एक निकटवर्ती वृक्ष की डाल से टँगे हुये काठ के डण्डे पर चोटें करता है। चोटों के सुनने पर अनेक नर नारी वहां आ जाते हैं। उनमें तूम्बी भी। धारा तूम्बी के कन्धों को एक क्षण भर बल के साथ डुलाती है। इन तीनों की ओर हाथ उठाकर कुछ कहती है, उसके हाथ का लक्ष्य, अश्वतुङ्ग कई बार बनता है। तूम्बी, गर्दन मोड़कर टेढ़ी दृष्टि से एक क्षण देखती है फिर दोनों हाथ ऊँचे करके सिर को थोड़ा झुकाती है, और चली जाती है। थोड़े समय उपरान्त कुछ स्त्री पुरुषों के साथ लौटती है। फिर स्त्री पुरुषों का वहीं हा हू ही हो का नृत्य और गान हो उठता है। धारा भी उस सङ्गीत में भाग लेती है।)

गजमद—क्या बिकट वीभत्स है, भगवन् !

अश्वतुंग—हँसना मत गजमद। यह नृत्य द्वीपवासियों के किसी पावन पर्व का प्रतीक है।

गजमद—मेरे मन में न हँसी रही और न रुदन ही। दोनों के बीच की छटपटाहट में हूँ। पूर्णिमा बहुत दूर नहीं है।

अश्वतुंग—स्मरण है समुद्र में उस दिन बवण्डर के आने के ठीक पहले तुम मुझको क्या क्या उपदेश दे रहे थे ?

गजमद—तब मेरे भीतर कविता थी, अब नहीं है।

अश्वतुंग—तुमसे मैंने उस दिन हँसी का वरदान पाया था, अब दक्षिणा के रूप में मैं उसको ब्याज समेत चुकाना चाहता हूँ।

गजमद—क्यों नहीं चुकाओगे ! इस परिस्थिति में भी ये आँखें खुली हुई हैं; वह तुमको स्पष्ट शब्दों में प्राण-दान दे गई है—तीन बार, पूरे तीन बार। ह !!!

अश्वतुंग—किस चक्कर में पड़े हो ? इन मनुष्य-भक्षियों का विश्वास करके भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये। हम में से कोई भी नहीं बचेगा। मृत्यु को भूलकर हँसी का आवाहन करो, क्योंकि वही अनन्त है, और सब अनित्य।

(अश्वतुंग के मनमें बच जाने का विश्वास दृढ़ होता जा रहा है)

चन्द्रस्वामी—मैं एक प्रार्थना करता हूँ,—जिस प्रकार का झूंठा या सच्चा आश्वासन उसने आपको दिया है, उसी प्रकार का हम दोनों को दिलवा दीजिये। पीछे भले ही, आपके साथ, हम दोनों भी मार डाले जायँ, परन्तु इस समय तो ढाढ़स बँध जायगी।

अश्वतुंग—कहूँगा अवश्य कहूँगा—मैं तो यहाँ तक अनुरोध कर दूँगा कि मुझको खालो और इन दोनों को छोड़ दो।

चंद्रस्वामी—धन्य हो ! धन्य हो !! महाराजकुमार ! आज मुझको अत्यन्त परिताप है कि मैंने ही आपको दुर्गति के इस गर्त में ढकेला।

अश्वतुंग—सर्वथा व्यर्थ ! सर्वान्श असत्य !! मेरे इस जन्म के कुकर्मों और पूर्व जन्म के सुकर्मों ने यहाँ भेजा। देश मेरे अत्याचारों से मुक्त हो गया और यहां आने से मुझको कुछ विवेक प्राप्त हो गया।

चन्द्रस्वामी—मैं आपका चिर-ऋणी रहूँगा।

गजमद—मैं भी।

(अश्वतुङ्ग किंचित मुस्कराता है)

अश्वतुङ्ग—यदि मैं मारा-खाया न गया, और फिर भी तुमको बचा लिया। तो भी, मेरे ऋणी बने रहोगे ? चिरऋणी !

गजमद—व्यङ्ग काहे को करते हो महाराजकुमार ! कोई नहीं चाहता कि आप मारे जायँ।

चंद्रस्वामी—हम को तो केवल यह अभीष्ट है कि आप अपनी वाणी द्वारा उस चण्डी को प्रभावित करदें। आप कर सकते हैं। वह मान गई तो ये सब मान जायेंगे। वही इस द्वीप की मुखिया जान पड़ती है।

गजमद—और वह दूसरी–तड़ङ्गी चुड़ैल ? वह इसकी महामान्य-विग्रह या महाबलाधिकृत या कुछ ऐसी ही होगी।

चंद्रस्वामी—नृत्य में कोई थोड़ा सा भी कहीं चूकता है तो ।[illegible] कोड़े लगा देता है।

गजमद—बीभत्स है ! भयङ्कर बीभत्स है !!

अश्वतुंग—बीभत्स कुछ भी नहीं। बालकों जैसा स्वभाव है इनका—विनाश करना, सृजन और व्यवस्था की ओर मुड़ जाना, क्षण भर में रुष्ट होजाना और दूसरे क्षण में हृष्ट।

गजमद—बालक तो दिखते नहीं यहां कहीं।

अश्वतुंग—हैं, बहुत थोड़े हैं। बाह्य के लिये एक दिन कुछ दूर निकल गया था, तब देखे थे। मनुष्य भक्षियों के सन्तति बहुत कम होती है ऐसा मैंने धान्यकटक में सुना था।

गजमद—द्वीपवासी साप, चूहे, लोमड़ी, मछली इत्यादि इत्यादि थलचरों तथा जलचरों, तथा कउये, गीध इत्यादि नभचरों को खा जाते हैं, मनुष्यों को न खायें तो क्या बिगड़ेगा इनका ?

अश्वतुंग—न खायें तो हम तुम सब बच जावेंगे और इनका कुछ बिगड़ेगा नहीं। देश मे कोई बौद्ध, शैव इत्यादि साधु महात्मा आवे तो इनका कम से कम नर-मेध तो छुटा ही दें।

चंद्रस्वामी—मैं बच गया और अपने ठौर ठिकाने पहुँच गया, और अपनी सम्पत्ति पुनः प्राप्त करली तो शिवालय और बौद्ध विहार की स्थापना अवश्य करूंगा। यहां शैव और बौद्ध साधुओं को भेजूंगा।

अश्वतुंग—एक यदि को और जोड़ो इसमें,—यदि वह महानाविक उस महाजलयान और उसकी महती सामग्री को अपने महा-उदर में न पचा गया तो।

(नृत्य और गान को छोड़कर धारा अश्वतुङ्ग के पास आती है)

अश्वतुंग—इसने कहीं हमारी कोई बात तो नहीं सुन ली, अन्यथा पखावज के दुहरे-तिहरे बोल निकल पड़ें।

धारा—(*अश्वतुङ्ग के थोड़े से केशों को पकड़कर और झटका देकर*) महाराजकुमार ! पल्लव !!

अश्वतुंग—सो तो अवश्य हूँ या था, परन्तु देवो, यह कंसकड़ोग्न तो न करो !

धारा— कंस ! कृष्ण !! मथुरा !!! गङ्गा !!!! जमुना !!!!!

गजमद—अहा हा हा ! देवी इस द्वीप की नहीं हैं, भारती सन्तति हैं।

अश्वतुंग—(*सिर खुजलाते हुये*) कहिये देवी क्या आज्ञा है ?

(*धारा सङ्केत द्वारा प्रश्न करती है कि नृत्य-गान कैसा होरहा है, कैसा लगरहा है ?*)

अश्वतुंग--(*सिर और हाथों के संकेत तथा मुख-मुद्रा द्वारा व्यक्त करते हुये*) वाह ! क्या कहने हैं !! इन्द्रपुरी की अप्सराओं को पछाड़ खिलाने वाला होरहा है !!!

(*धारा जिस द्रुतिगति से आई थी उसी द्रुतगति के साथ अपने सङ्गीत समाज में लौट जाती है !)*

गजमद—अब निश्चय हो गया, आपको प्रसन्न करने के लिये ही यह सब स्वाँग किया जा रहा है। किसी दिन आपके साथ विवाह करेगी यह देवी और आप इस द्वीप के राजा हो जायँगे। हमारी प्राण रक्षा में कोई सन्देह नहीं रहना चाहिये।

अश्वतुंग—तुम दोनों को बचाने का पूरा प्रयत्न तो करूँगा ही। उस तड़ङ्गी मुटल्लू के साथ विवाह करने से तुमतो रहे, क्योंकि सौन्दर्य शास्त्र के ज्ञाता कवि जो ठहरे, परन्तु यदि चन्द्रस्वामी करलें तो मैं इनको महामात्य, महासन्धि विग्रहक महाकोषध्यक्ष इत्यादि में से कुछ न कुछ बनालूँगा, संशय केवल एक छोटी सी बात का है कि इस देवी के साथ

विवाह होने के पहले मेरा पाणि-ग्रहण मृत्यु के साथ होगा। तुम्हारे बचाने का प्रण जो मैंने किया है।

चन्द्रस्वामी—नहीं, ऐसा नहीं होगा।

गजमद—नहीं होगा ऐसा; मेरा विश्वास प्रतिफलित होगा।

(द्वीपवासियों का नृत्य तीव्रता पर आता है। तूम्बी कुछ द्वीप-वासियों को नाचते-नाचते एक ओर ले जाती है। धारा हाथ उठाती है। नृत्यगान बन्द हो जाता है। तूम्बी की त्योरी चढ़ी हुई है। जो समूह उसके साथ हट गया है, उसके चेहरों पर भी रोष के चिन्ह हैं। जो समूह धारा के निकट है, वह कुछ दबका हुआ सा है, धारा की ओर टकटकी लगाये हुये है कि देखें क्या करने को कहती है। धारा और तूम्बी का कुछ वाद-विवाद चलने को है जिसमें धारा निश्चल दृढ़ता और तूम्बी अपने अधीर रोष को मुख-मुद्रा और अङ्गों से व्यक्त कर रही हैं। बीच बीच में उन दोनों की वृत्तियां मूक अभिनय में भी प्रकट होजाती हैं। फिर बातें करने लगती हैं)

अश्वतुंग—यह क्या हो पड़ा है, चन्द्रस्वामी !

चन्द्रस्वामी—समझ में यथावत नहीं आ रहा है। झगड़ा हो रहा है। आपने ठीक कहा था कि द्वीपनिवासी बाल-स्वभाव के होते हैं। किसी वस्तु की नष्ट करना चाहते हैं। धारा कह रही है मैं करूँगी; तूम्बी कहती है मैं।

अश्वतङ्ग—तो अब हम लोग मानव से वस्तु हुये ! और इसी जन्म में !! पुनर्जन्म के पहले ही !!! श्रेष्ठी जी, मेरी दिशा में सङ्केत अधिक है जिसका सीधा तात्पर्य है कि मानव से वस्तु का रूपान्तर मैं पहले पाऊँगा। थोड़ा ध्यान देकर सुनो। अब यह सौन्दर्य सवाक होना चाहता है।

(धारा और तूम्बी का विवाद चिल्ला चिल्लाकर होने लगता है)

चन्द्रस्वामी—(*हँसकर*) अजी महाराजकुमार इस समय इनका स्वभाव विनाश-क्रिया की ओर नहीं है, रचनात्मक है। विवाह की बात

चल रही है और साथ ही द्वीप के मुखिया बनने की। धारा कहती है आपके साथ विवाह करूँगी, वह लड़की हठ करती कि नहीं मैं करूँगी। धारा ने कहा है कि तू इसके साथ (*गजमद की ओर संकेत करता है*) करले ! प्राणों का प्रश्न नहीं है, प्रणय का प्रश्न है !

गजमद—छिः ! इस द्वीप में भत्स की कोई सीमा भी है या नहीं ?

अश्वतुंग—घड़ी भर में जान जाओगे, परन्तु वैसे बात तो कुछ बुरी नहीं है कविराज ! प्रकाश और अन्धकार, मधुरता और तिक्तता, कूप और मण्डूक, विरलता और सघनता, विद्युत और मेघ, छटा और घटा, मुण्ड और शुण्ड का सापेक्षता में सङ्ग है, वैसे ही तुम्हारा और उस वीर वनिता का सहयोग भी भविष्य का बड़ा साधक बनेगा। तुम्हारे एक पुरखा भण्डभद्र थे अब सन्तान होगी रुद्रभण्ड !

गजमद—(*रुष्ट स्वर में*) आप यह क्या अनर्गल वार्ता कर रहे हैं। मैं मृत्यु का वरण करलूँगा, परन्तु इसके साथ विवाह ! शिव !! शिव !!! मेरा तो जी मचलाने लगा।

अश्वतुंग—बहुत केले खाजाने का परिणाम होगा।

(*वे दोनों चिल्लाने के उपरान्त हुङ्कार-फुङ्कारों द्वारा अपना रोष प्रकट करने लगती हैं*)

चन्द्रस्वामी—अब कोई अनहोनी होने वाली है।

अश्वतुंग—तुम करोगे श्रेष्ठी परिणय, उस गजगामिनी के साथ ?

चन्द्रस्वामी—प्राण बचें, कैसे भी तो बचें।

गजमद—छिः !!!

अश्वतुंग—मुझको तो आरम्भ से ही शङ्का है। परस्पर युद्ध तो करने से रहीं वे। अन्ततः निर्णय करेंगी कि दोनों वरों को समाप्त करदो—न रहेगा बांस न बजेगी बाँसुरी। रह गये चन्द्रस्वामी श्रेष्ठी सो इनको द्वीप का मुखिया बनाकर, मन्दिर या बिहार को स्थापित करके, पूजा अर्चा करती रहो !

(धारा चिल्ला चिल्लाकर कुछ कहती है। वे दोनों धमकी के पैंतरे पर हैं)

चन्द्रस्वामी—वह कह रही है कि परस्पर मत लड़ो, हमारी तुम्हारी कहा सुनी पर ये तीनों एक दूसरे से लड़े जारहे हैं !

अश्वतुंग—यहां पैर इस प्रकार काठ में न बँधे पड़े होते तो किसी पेड़ पर चढ़ कर देखते इस सवाक और अवाक नाटक को। दिखता है अब धौल धप्पड़ होती ही है, हमारा कुशलक्षेम के लिये वे सभी कुछ कर सकती हैं—चाँटे थपेड़ों से वध तक। अपना नहीं, हम सबका।

(धारा और तुम्बी अपने अपने कन्धे से धनुष उतार लेती हैं और बाणों के मूठे भी। दोनों के समूह भी सन्नद्ध होजाते हैं)

गजमद—पैर की बेलों को तोड़लो ! स्वच्छन्द होकर भाग निकलो !!

अश्वतुंग—ऐसी मूर्खता मत करना ! यह रात नहीं है, दिन है। वे सब धनुष और बाण अपनी देहों पर उन्मुख हो जावेंगे।

चन्द्रस्वामी—*(अपनी तोंद पर सहसा हाथ फेरते हुये)* भागना व्यर्थ है।

अश्वतुंग—आगई वह पूर्णिमा इसी क्षण ! भजलो शिव-शङ्कर को जितना बने !!

(धारा और तुम्बी अपने अपने समूहों के साथ तुरन्त तितर-बितर होकर निकटवर्ती पेड़ों की ओटें लेलेती हैं। धारा की और तुम्बी की कमर में एक एक पुङ्गी पड़ी हुई है। उसको वे फूँक कर बजाती हैं। दोनों की ध्वनियाँ भिन्न हैं। पुंगियों के बजने पर द्वीप में दूर दूर से कोलाहल सुनाई पड़ने लगता है। धारा, तुम्बी और उनके समूह ओटों से बाण चलाते हैं। जो सनसनाते हुये इधर उधर निकल जाते हैं, किसी को नहीं लगते।)

अश्वतुंग—*(लेटते हुये)* लेट जाओ ! लेट जाओ !! जब तक सम्भव हो, उस पूर्णिमा के मुहूर्त से अपने को बचाये रहो !!!

(गजमद और चन्द्रस्वामी भी लेट जाते हैं)

गजमद—मेरा मन बहुत विचलित हो रहा है।

अश्वतुङ्ग—क्रोध वाण ने छेदा नहीं कि हुआ जाता है निश्चल। करो हँसी की आराधना शिव शम्भु के नाम के साथ।

चन्द्रस्वामी—हे भगवन ! हे भगवन् !! कुछ नहीं दिखलाई पड़ रहा है कि क्या हो रहा है, क्या होने वाला है।

अश्वतुङ्ग—आँखें मींचलो, सुनते भर रहो। आँख का काम नहीं है, कान का काम है।

(द्वीपवासियों की एक भीड़ एक दिशा से और दूसरी भीड़ दूसरी दिशा से आ जाती है। दोनों भीड़ें भागती दौड़ती हैं और हटते हटते युद्ध करती हुई जाती हैं। तम्बी का समूह पिछड़ जाता है। धारा निकटवर्ती व्यक्तियों से कुछ कहती है। वे भी अपने समूह को लेकर जाते हैं। धारा के साथ केवल एक द्वीपवासी रह जाता है। युद्ध करने वालों का कोलाहल दूर सुनाई पड़ने लगता है। धारा उस द्वीपवासी योधा को साथ लिये हुये इन तीनों के पास आती है और अश्वतुंग के बन्धन को अपने हाथ से तोड़ देती है। अश्वतुंग खड़ा हो जाता है)

अश्वतुङ्ग—देवी जी, आज्ञा ? अब क्या करूँ ?

धारा—*(जिस दिशा में द्वीप-वासी योद्धा समूह गये हैं उस दिशा से भिन्न दिशा में हाथ का संकेत करती हुई)* देवी-आज्ञा !

चन्द्रस्वामी—महाराजकुमार ! महाराजकुमार !! हमको भी तो मुक्त करवाइये।

अश्वतंग—*(गिड़गिड़ाहट के स्वर में)* श्रीमती देवी ! मेरे इन अधम अभागे मित्रों को भी मुक्त करने की दया करो।

(धारा त्वरा के साथ नाहीं का हाथ हिलाती है और धीरे से उसके एक गाल पर चाँटा लगाकर आँखों से ममता प्रकट करती है)

अश्वतुंग—(हाहा खाकर और अपने गले पर छुरी से काटे जाने का संकेत करते हुये) मेरा वध चाहे कर डालो, परन्तु इनको अवश्य मुक्त कर दो।

धारा—(अश्वतुंग के दूसरे गाल पर धीरे से एक चाँटा और लगाकर, रूखी त्वरित मुस्कान के साथ) मुक्त ! हुं !! (उन दोनों के बन्धन-मुक्त करने का अपने साथी को हाथ के झटके के साथ संकेत करती है। वह उनके बन्धनों को तोड़ देता है। दोनों अश्वतुंग के पास आकर खड़े होजाते हैं)

गजमद और चन्द्रस्वामी—जय शङ्कर !

धारा—जय शङ्कर !!

(धारा हाथ का संकेत करती हुई उन सबों को जंगल के एक भाग में द्रुतगति के साथ ले जाती है। चन्द्रस्वामी शीघ्रता के साथ नहीं चल पाता है तो उसको धकियाती है। वे सब चले जाते हैं। उनके जाने के कुछ क्षण उपरान्त हड़बड़ाये हुये कुछ द्वीप-निवासी आते हैं और वहां किसी को न पाकर लौट जाते हैं)

सातवां दृश्य

[उसी द्वीप का एक जङ्गली पहाड़ी भाग। एक पहाड़ी के नीचे अश्वतुङ्ग, गजमद और चन्द्रस्वामी आते हैं। अश्वतुङ्ग के हाथ में कमठा और तीरों का एक मूठा है, गजमद के हाथ में भी। चन्द्रस्वामी एक लम्बा लक्कड़ लिये है। समय—सूर्यास्त के पूर्व।]

अश्वतुंग—यहां आसपास कोई कोलाहल नहीं सुनाई पड़ता है। दोनों समूह कहीं दूर जा गुथे हैं। अब यदि मुझसे लड़ाई हो पड़े तो मरने में हँसी को भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

चन्द्रस्वामी—कुमार, द्वीपवासियों के बाण विषाक्त होते हैं। इसका ध्यान रखना।

(मूठे की वाण-शिराओं का निरीक्षण करता है। गजमद भी।)

अश्वतुंग—इन नोकों पर तो विष का कोई चिन्ह नहीं दिखलाई पड़ रहा है।

चन्द्रस्वामी—पशुओं या पक्षियों को मारने के उपरान्त द्वीपवासी वाणों को धोते नहीं हैं। नोकों पर रक्त मढ़ कर सूख जाता है और विष के अणुओं में परिवर्तित हो जाता है। इसलिये ये सब विषाक्त हैं।

गजमद—तुम्हारा लक्कड़ तो निर्विष है। जल को पाते ही धो डालेंगे पूरे समूचे वाणों को।

चन्द्रस्वामी—अब कहा चलें? बड़ी आधी घड़ी पीछे सूर्यास्त हो जायगा। चन्द्रमा के झीने प्रकाश में कुछ दिखलाई नहीं पड़ेगा। आग यहा है नहीं। कदली कुञ्ज या फल वाले वृक्षों का इस स्थान के आसपास भी अभाव है। देवी जी से न जाने कहा और कब भेंट होगी। होगी भी अथवा नहीं इसका कोई निश्चय नहीं। अब कहाँ चलें?

अश्वतुंग—मृत्यु की अपेक्षा जीवन अधिक कठिन है। मृत्यु आई और समेट ले गई, जीवन तो आते आते ही आता है। इसलिये कोई आतुरता नहीं।

गजमद—कविता! प्रतीति होता है कि भविष्य में मेरी भी जाग उठेगी, अर्थात् प्राण बचे रहे तो।

(नेपथ्य में पैरों की आहट होती है।)

अश्वतुंग—लेट जाओ। देखें कौन आरहा है।

(वे सब लेट जाते हैं।)

(धारा एक द्वीपवासी के साथ सतर्क आती है वह द्वीप के शस्त्रों से सज्जित है। उसका साथी भी। साथी मिट्टी का एक वैसा ही जल-पात्र लिये है। धारा केले और द्वीप के कुछ फल मूल। धारा इनको लेटा हुआ देखकर खड़ी हो जाती है। पहिचानने में विलम्ब नहीं लगता है।)

धारा—(*धीमे स्वर में*) हुई! हुई!!

(वे तीनों उसको देखकर उठ खड़े होते हैं। धारा उनको अक्षत देखकर प्रसन्न हो जाती; हैं प्रसन्नता हँसी द्वारा प्रकट नहीं की जाती है, उनके फैले हुये हाथों में खाद्य सामग्री को शीघ्रता के साथ देने में। चन्द्रस्वामी तुरन्त खाने लगता है। अश्वतुङ्ग संकेत द्वारा प्रश्न करता है - अब कहां चलें ? धारा एक पहाड़ी की ओर संकेत करती हुई फल मूल खाते चलने का अनुरोध करती है, और अग्रसर हो जाती है।)

अश्वतंग—मृत्यु भी टल गई और अब जीवन भी कुछ सहज सुगम होता दिखता है। (वे सब जाते हैं)

आठवां दृश्य

[स्थान—उसी द्वीप का एक पहाड़ी भाग। एक पहाड़ी में गुफा। गुफा के आगे थोड़ी दूर आग जल रही है। आग के घेरे के पीछे धारा, अश्वतुङ्ग, गजमद, चन्द्रस्वामी और कुछ द्वीपवासी इधर उधर बैठे हुये हैं। समय—रात्रि।]

धारा—(निकट बैठे हुये अश्वतुङ्ग की ओर यकायक मुड़कर अपने मूटे में से एक लोहे का तीर निकालती है और अश्वतुङ्ग को देती है) बाप्पा ! (ऊपर की ओर संकेत करके बतलाती है कि तीर से मारा जाकर स्वर्ग को चला गया) कैलाश !!

अश्वतुंग—(तीर को लेकर और खेद की मुद्रा बनाते हुये) इस द्वीप के सभी निवासी मरकर कैलाश को ही जाते हैं।

(दूरी पर कोलाहल सुनाई पड़ता है जैसे कहीं युद्ध हो रहा हो।)

अश्वतंग—युद्ध ? इधर ?

धारा—न। युद्ध न।

अश्वतुंग—मैं युद्ध करूंगा—उनसे (जिस दिशा से कोलाहल का शब्द आता सुनाई पड़ रहा है;उधर सङ्केत करता है)

धारा—न, न। देवी प्रजा (*अपनी छाती पर हाथ रखकर।*) देवी प्रजा।

अश्वतुंग—अच्छा आपकी प्रजा है! इतना ही हल्ला क्यों कर रही है आपकी यह प्रजा? (*संकेत में प्रश्न करता है*)

धारा—विजय आनन्द, महाराजकुमार!

अश्वतुङ्ग—अच्छा देवी जी, तो अब (*सोने की इच्छा का संकेत करते हुये*) निद्रा आ रही है।

धारा—न; सावधान! (*एक दिशा में इङ्गित करती हुई*) शत्रु!!

अश्वतुङ्ग—अच्छा, हम सब डटे बैठे हैं, क्षत्रिय का काम जो ठहरा।

धारा—क्षत्रिय देवी, बाप्पा क्षत्रिय, मगध।

अश्वतुंग—ओ हो! क्षत्रिय!! नरमेध करने वाले क्षत्रिय!!! विलक्षण क्षत्रिय!!!! और मनुष्य भक्षी भी!!!!!

धारा—न, न। मनुष्य-भक्षी न। चि! चि!! चि!!! बाप्पा न। देवी न (*द्वीपवासियों की ओर सङ्केत करती हुई*) मनुष्य-भक्षी। (*अश्वतुङ्ग की पीठ पर दो धपाड़े जमाती हुई*) क्षत्रिय! धन्य!!

अश्वतुंग—सो तो सब ठीक है, परन्तु इन कर्कश धपाड़ों के साथ नहीं! अन्यथा मेरा तो रीढ़ पिलपिला उठेगा।

(*धारा मुस्कराती हुई*)

अश्वतुंग—अब यहा का राजा कौन है देवी?

धारा—(*अपने वक्ष पर उँगली रखकर*) महारानी देवी। (*अश्वतुङ्ग के कंधे पर हाथ रखकर*) महाराजकुमार पल्लव।

अश्वतङ्ग—धन्य हो देवी! धन्य हो!! मेरे वस्त्र तो कुछ ही समय उपरान्त स्वर्ग का मार्ग पकड़ेंगे इसलिये अभी से पल्लवाच्छादन का आश्रय ग्रहण करना पड़ेगा क्या? (*वह समझ नहीं पाई इसलिये आवरण वेधी दृष्टि से उसकी ओर देखती है। अश्वतुंग सहमता है कि कहीं शारीरिक दण्ड न दे बैठे। यह देखकर धारा प्रश्न सूचक*

दृष्टि करती है। अश्वतुङ्ग संकेत द्वारा समझा देता है कि कोई बात नहीं है।)

गजमद—उस तरङ्गा के सम्बन्ध में पूछिये कि कहाँ गई, जीवित है या मारी गई ?

अश्वतुङ्ग—मुझको क्या पड़ा ?

गजमद—जो कुछ और चर्चा करे, चुपचाप बैठे बैठे मैं तो अधीर हो उठा हूँ। उसने यह तो बहुत कुछ स्पष्ट कर ही दिया है कि आप राजा होंगे और वह—

अश्वतुंग—चुप ! चुप !! अभी वह पूर्णिमा वाला मुहूर्त सिर पर से टला नहीं है। यह संस्कृत और प्राकृत के बहुत से शब्द जानती है। ऐसा न हो कि तुम्हारी किसी बात से असन्तुष्ट हो जाय, तो चटाचट की व्यवस्था तुरन्त कर डाले।

धारा—व्यवस्था, देवी, हुं।

अश्वतुङ्ग—सुन लिया महाशय जी !

चन्द्रस्वामी—मैं इसीलिये चुप हूँ।

गजमद—मै भी चुप रहूँगा।

धारा—(*कान लगाती हुई*) सावधान !

अश्वतुंग—(*प्रश्न सूचक सङ्केत करते हुए धीमे स्वर में*) क्या है ?

धारा—(*धीमे स्वर में*) शत्रु।

(*अश्वतुंग को कुछ नहीं सुनाई पड़ता। धारा द्वीप-वासियों से द्रुतगति में कुछ कहती है। वे सब सन्नद्ध हो जाते हैं। धारा अश्वतुंग, गजमद और चन्द्रस्वामी को गुफा में चले जाने का संकेत करता है। अश्वतुंग धनुष और बाणों के मूठे को हाथ में लेकर नाहीं करता है।*)

अश्वतुंग—तुम लोग तुरन्त गुफा में जाओ।

(*वे दोनों गुफा की ओर जाते हुये*) आप भी आइये।

अश्वतुंग—तुम जाओ।   (वे दोनों जाते हैं)

(एक दिशा से दूसरे पक्ष के द्वीप वासी आकर आग के घेरे के बाहर इकट्ठे हो जाते हैं। अश्वतुंग कमठे पर वाण को चढ़ाकर लेट जाता है। लेटते हुये उन सबको भी लेटकर युद्ध करने का संकेत करता है। वे सब लेट जाते हैं। युद्ध होने लगता है। दोनों ओर से तीर चलते हैं। दूसरे पक्ष के लोगों में से कुछ भूशायी हो जाते हैं। इस पक्ष का कोई भी आहत नहीं होता।)

धारा—*(अश्वतुंग से चिल्लाकर)* लोह वाण! लोह वाण!!

(लोह वाण का शब्द सुनते ही दूसरे पक्ष के द्वीप-वासी आहतों को घसीट कर ले भागते हैं। धारा के पक्ष के द्वीप-वासी विजयोन्माद में नाच उठते हैं। अश्वतुंग धारा को सङ्केत करता है कि द्वीप-वासी थोड़ी दूर जाकर उत्सव मनावें। धारा उनको आज्ञा देती है और वे चले जाते हैं। नेपथ्य में छाया नृत्य होने लगता है। धारा अश्वतुंग को हठात लिटा देती है और सो जाने का सङ्केत करती है।)

धारा—निद्रा! हुँ सजग।

अश्वतुंग—जो आज्ञा देवी! पर वे दोनों अभागे गुफा में सड़ रहे होंगे।

धारा—हुँ। *(उपेक्षा करती है)*

अश्वतुंग—मानव हैं। मेरे मित्र हैं।

धारा—मित्र! हुँ!!

(अश्वतुंग उनको बुला लेता है। वे पसीना पोंछकर लेट जाते हैं)

चन्द्रस्वामी—जय हो लोह वाण की! उसके नाम मात्र ने शत्रु को भगा दिया!

धारा—यह लोह वाण!!

अश्वतुंग—जय लोह वाण!!!

(धारा दुलार के साथ उसके केशों को बिखेरकर सिर पर हाथ फेरती है।)

अश्वतुंग—तुम भी निद्रा ले लो, देवी।

धारा—न, तुम।

गजमद—अब तो इनका वाग्विशेष बहुत शीघ्रता के साथ बढ़ रहा है!

अश्वतुंग—देखना कुछ दिनों में, तुम्हारे शब्द ज्ञान को इनके सामने मुँह की खानी पड़ेगा। जब यहीं जीवन यापन करना है तब इनको पढ़ाने में ही पर्याप्त समय कट जाया करेगा।

गजमद—यह सब ठीक है। सब ठीक है! मैं समझ गया!!

चन्द्रस्वामी—सो भी जाओ। व्यर्थ की खींचपड़ मत करो।

(धारा अश्वतुङ्ग के सिर के नीचे अपनी गदेली रख देती है, मानो तकिया बना रही हो। मृदुल दृष्टि से उसको निहारती है। दूसरे हाथ से उसकी भुजाओं की प्रबल मान्सल पेशियों को टटोल टटोलकर मुस्कराती है। अश्वतुङ्ग एक क्षण उसकी ओर देखकर आँख मूँदता है और फिर खोलता है। वह अपलक देखती रहती है। अश्वतुङ्ग आँख बन्द कर लेता है। गजमद एकाध बार सिर को उझका कर लक्ष करता है।)

गजमद—महाराजकुमार, सावधान!

अश्वतुंग—(उन्निद्र) किससे?

गजमद—अनजाने वैरी से।

अश्वतुंग—अनजाने वैरी से लड़ाई नहीं होती, जाने-पहिचाने मित्रों से होती है।

(चन्द्रस्वामी गजमद के कन्धे को दबा देता है, मानो कह रहा हो चुपचाप पड़े रहो। नेपथ्य में धारा के पक्ष वाले द्वीपवासियों का नृत्य और गान होता रहता है।)

यवनिका।

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[स्थान—पूर्वीय समुद्र का एक भाग। समुद्र शान्त है। एक महायान पश्चिम से आकर पूर्व की ओर चला जाता है। फिर दूसरा महायान उसी दिशा से आता है। दोनों यानों के रंग अलग अलग हैं, परन्तु पताका दोनों पर पल्लव-नरेश के लांछन की है, केसरिया भूमि पर अर्धनारीश्वर शिव, पार्श्वों पर गंगा यमुना के प्रतिबिम्ब, नीचे चक्र जो वाकाटक स्थविर सम्राटों का चिन्ह था। प्रांगण पर महानाविक, जय और कुछ यात्री हैं। समय—प्रातःकाल]

जय—नागद्वीप पर पहुँचने के लिये अब कितना और समय लगेगा?

महानाविक—समुद्र शान्त रहा तो तीन दिन और लगेंगे। नागद्वीप अनेक द्वीपों का समूह है। कह नहीं सकते पहले किस द्वीप पर पहुँचेंगे। पोत का भाग्य पवन के अधीन है।

जय—पवन को, भाग्य अर्थात कर्म के अधीन किया जा सकता है।

महानाविक—जन्तर-मन्तर से ?

जय—नहीं, यन्त्र-तन्त्र से। उसके विज्ञान को ही मन्त्र कहते हैं।

महानाविक—आप तो स्वर्ण बनाने की क्रिया को जानते हैं ?

जय—जीवन भर के श्रम-बिन्दुओं की नदी बहाकर एक कङ्कड़ की तौल के स्वर्ण को पाया तो क्या पाया ? यह देखो, सूर्य की अरुण किरणें समुद्र की लहरों पर जो स्वर्णकण बिछा रही हैं, इनका संग्रह जितना सहज है उतना ही रसायन से स्वर्ण का उत्पन्न करना। अपने यहाँ के पर्वतों और नदियों की रेत में स्वर्ण है, परिश्रमी जन उनसे स्वर्ण बनाते रहते हैं; तुम सब जो परिश्रम करते हो वह और भी अधिक मूल्यवान स्वर्ण का जनक है। लौकिक स्वर्ण के उत्पादन की क्रिया यही है। इससे भी बढ़कर एक प्रकार का स्वर्ण और है। उसका नाम है आत्म-तोष। समझे ?

महानाविक—समझ गया। नीचे जाकर कुछ काम देखूँ।

(*जाता है*)

जय—आप लोग कहाँ जा रहे हैं ?

एक यात्री—सौम्य द्वीप को। वहाँ हमारा व्यापार चलता है।

दूसरा—मैं भी वहीं जाऊँगा। वहाँ से वारुण द्वीप को जहाँ कन्दर्पकेतु और उनकी पुत्री गौतमी जा रहे हैं।

जय—जानता हूँ। उनका यान आगे निकल गया है। वे अपने साथ जा रहे हैं।

तीसरा—मैं सौम्य द्वीप से वारुण होता हुआ चम्पा को जाऊँगा। आपके सत्सङ्ग के लिये कन्दर्पकेतु इस यान द्वारा जा रहे हैं। उसी के लाभ-लोभ से मैं भी।

एक—(*जय से*) आप कहाँ सिधार रहे हैं ?

जय—अभी तो नागद्वीप में जाने का सङ्कल्प है।

दूसरा—वहां तो मनुष्य-भक्षी राक्षसों का निवास है।

जय—राक्षस कोई नहीं होता। मनुष्य-भक्षी होंगे तो उनका सुधार किया जावेगा। नर-बलि, पशु-बलि सबको बन्द करवाने का प्रयास करूँगा।

एक—आप तो थोड़े से ही हैं। आपके पास शस्त्र नहीं हैं। वे आपको मारकर खा जायँगे।

जय—जब भगवान बुद्ध से उनके एक शिष्य ने अपने भारत देश के उत्तर-पश्चिम वर्ती एक खण्ड में धर्म-प्रचार के लिये आज्ञा मांगी तब भगवान ने कहा, उस खण्ड के निवासी क्रूर सुने गये हैं तुमको गालियां देंगे, तब क्या करोगे? शिष्य ने उत्तर दिया, गालियां देंगे तो मारेंगे तो नहीं। भगवान बोले, और यदि तुम्हारी मारपीट की तो? उसने विनय की, मारपीट करेंगे तो मार तो नहीं डालेंगे। भगवान ने प्रश्न किया, और जो मार डाला तो? शिष्य ने कहा, मार डालेंगे तो परोपकार करते करते प्राण चला जायगा और निर्वाण प्राप्त हो जायगा। इसलिये हमलोगों को मारे और खाये जाने का कोई भय नहीं।

एक—भिक्षु प्रवर, क्या हमलोग आपकी कुछ सेवा कर सकते हैं?

जय—अभी तो कुछ नहीं चाहिये। परन्तु यदि आवश्यकता पड़ी तो एक छोटा सा संघाराम बनवा देना। द्वीपवासी नर-बलि और पशु-बलि, थलचरों और नभचरों का वध, अपना पेट भरने के लिये करते हैं, क्योंकि उनकी गांठ में और कोई साधन नहीं। हम विविध प्रकार के अन्न और फलों के बीज अपने साथ लिये जा रहे हैं। द्वीपवासियों को अन्न और फल उत्पन्न करने की क्रिया सिखलायँगे जिसमें वे हिन्सा से विरत हो जाने की वृत्ति को ग्रहण करें। उनको हम लोहे के हल, हँसिये, हथौड़े इत्यादि बनाने की भी शिक्षा देंगे। जो यान आगे निकल गया है उसमें गायें और बैल भी हैं।

दूसरा—द्वीपवासियों के हाथ में लोहे के शस्त्र न पहुँच जावें कहीं, नहीं तो वे एक दूसरे का विनाश कर देंगे।

जय—विनाश हथियार नहीं करता है, दूषित हृदय करता है। हृदय के दोष को दूर कर देने से फिर आशङ्का नहीं रहती।

एक—धन्य हो प्रभो! धन्य हो!!

दूसरा—अपने देश भारत में अब भी हिन्सा बहुत होती रहती है। आप वहीं रहकर बहुत काम कर सकते थे।

जय—अन्य भिक्षु तो कर रहे हैं।

(यान चला जाता है)

दूसरा दृश्य

[स्थान—नागद्वीप समूह का वह द्वीप जहां अश्वतुंग, गजमद चन्द्रस्वामी, धारा इत्यादि हैं। खण्ड में इधर उधर छोटी बड़ी पहाड़ियाँ हैं। एक ओर सघन वृक्षाच्छादित नाला। मैदान में इखरे-बिखरे-बिरवे। वृक्षों के पीछे छोटे बांसों के झुण्ड। अश्वतुंग गजमद और चन्द्रस्वामी बांस के नुकीले लठ भी लिये हुये आते हैं। तीनों पल्लव-बल्कल वसन धारण किये हुये हैं। तीनों के केश बहुत लम्बे होकर फहरा गए हैं। दाढ़ियां भी लम्बी लम्बी हो गई हैं। समय—दिन]

चन्द्रस्वामी—यहाँ भी कुछ नहीं मिला, न फल और न फूल। देवी जी का भी पता नहीं लग रहा है।

अश्वतुंग—तीन वर्ष में सब फल समाप्त कर दिये।

चन्द्रस्वामी—मुझ अकेले ने!

अश्वतुंग—नहीं। फिर अकाल पड़ गया। न भी पड़ता तो चार वर्ष में वही स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो आज तीन वर्ष में सामने आ गई है। एक दिन तो आनी ही थी।

गजमद—कविता तो मर ही चुकी है, अब मैं भी मरने जा रहा हूँ। थक थक जारहा हूँ।

अश्वतुंग—कहां ? इस नाले में स्वर्गयात्रा के लिये उतरने वाले हो ?

गजमद—आपके परिहास के मारे अब तो मन खीझने लगा है।

अश्वतुंग—तुम्हारी कविता से मेरा कभी नहीं खीझा। इस वृक्ष की छाया में उपाय सोचें। आओ।

गजमद—(*उदास स्वर में*) क्या उपाय सोचें !

(*तीनों एक वृक्ष की छाया में जाते हैं*)

अश्वतुंग—चन्द्रस्वामी, मै तो अपना पेट किसी प्रकार भरता रहता हूँ। तुमको और इनको भी एक उपाय बतलाता हूँ।

दोनों—बतलाइये।

अश्वतुंग—एक नहीं दो उपाय हैं—प्रथम के बतलाने के पूर्व थोड़े से प्रश्न। द्वीप-वासी भूखों क्यों नहीं मरते ? वनवास की दिशा में पाण्डव भूखों क्यों नहीं मरे ? जङ्गलों में क्या उनको कोई रोटियां बांधकर दे आता था ?

गजमद—ओफ ! फिर वही !! थोड़े से पांडवों के लिये वन भी तो कितने विस्तृत थे।

अश्वतुंग—हमलोग न अपने युग को जानते हैं और न प्राचीन युगों को, इसी कारण अर्वाचीन को बुरा और प्राचीन को अच्छा कहते हैं। मैं कहता हूँ पाण्डवों ने पशु-पक्षी मार कर खाये होंगे, तुम भी वैसा ही करो। द्वीप-वासी भी यही करते हैं, इसलिये जीवित हैं।

गजमद—हैं कहां, यहां पशु पक्षी ? होते भी तो हमारे लिये अग्राह्य थे।

अश्वतुंग—चन्द्रस्वामी, इनकी तो सुनली। तुमको एक सुझाव देता हूँ—इस द्वीप में कछुए, चूहे, लोमड़ी और वनबिलाव बहुत हैं। क्यों न पिल पड़ो उन पर बाँस के इस खुनीते से और जियो सौ वर्ष ?

गजमद—शिव ! शिव !!

चन्द्रस्वामी—इससे तो तीन वर्ष पहले की वह पूर्णिमा मिल जाती और प्राणान्त हो जाता तो बहुत श्रेयस्कर होता।

अश्वतुंग—अर्थात जिस ऋण से कभी उऋण न हो सकने की तुमने घोषणा की थी, वह चुक गया!

चन्द्रस्वामी—आपके उस उपकार को तो कभी नहीं भूल सकूँगा, परन्तु चूहे, कछुए खाकर जीवन को और भी निकृष्ट करूँ यह कैसे होगा!

अश्वतुंग—तब दूसरे उपाय की बात सुनो। वह जो ऊँची पहाड़ी उधर दिख रही है उसके ठीक नीचे उत्तुङ्ग तरङ्गों वाला समुद्र है। पहाड़ी के शिखर पर खड़े होकर अपनी जय बोलो और उछल कर शीर्षाशन की क्रिया करते हुये इस निकृष्ट लोक से उत्कृष्ट लोक में पहुँच जाओ! उसको परम धाम भी कहते हैं।

चन्द्रस्वामी—(*मुस्कराकर*)
गजमद—(*रूखे स्वर में*) } *एकसाथ*—फिर वही!

अश्वतुंग—एक विकल्प और—नाले के कूलों पर छोटे छोटे अनेक बिरवे खड़े हैं, इनकी जड़ें खोदो और भून कर खा जाओ। मैं भी आनन्द के साथ खाऊँगा। थोड़ी सी धारा के लिये रख छोड़ेंगे।

चद्रस्वामी—जड़ें न जानें किस स्वाद की होंगीं।

अश्वतुंग—अजी स्वाद की क्या पूछते हो। षडरस और छप्पन व्यन्जनों का स्वाद। यदि जड़ों के नीचे कुछ और गहरा खो देंगे तो बने बनाये पक्वान्न भी मिल जायँगे। धान्यकटक के बने हुये हुये!

(*दोनों मुस्कराने लगते हैं*)

चन्द्रस्वामी—निरामिश भोजियों के लिये यही विकल्प उत्तम है। सभव है नाले के किनारे घूमने फिरने से कुछ शाक भी मिल जाय।

गजमद—तो चलो फिर।

अश्वतुंग—अधिक भ्रमण में अपना समूह या उस सूर्पनखा तुम्बी का समूह, कोई न कोई, तो मिल ही जावेगा।

चन्द्रस्वामी—यह तो आपने भय की बात कह दी ! तूम्बी का समूह न हो यहां कहीं निकट ?

अश्वतुंग—मैं आगे रहूँगा, वह लोह बाण अपने दर्शन मात्र से आतङ्कित करके तूम्बी के समूह को यों ही भगा देगा। परन्तु एक समस्या फिर भी रह जाती है। इधर उधर भटक गये तो धारा से कहां भेट होगी ?

गजमद—कहां गई यह छोकरी ?

अश्वतुंग—आपकी तौल में अब वह छोकरी ही रह गई है ! उस समय चण्डिका और न जानें क्या क्या थं; अब हमारी तुम्हारी सूक्ष्म बातें तक सुनने समझने लगी है और अपने विचार हमारी तुम्हारी ही भाषा में प्रकट करने लगी है, तो छोकरी हो गई है !!

गजमद—अरे तो उसके मुँह पर तो नहीं कहा।

चन्द्रस्वामी—वह महाराजकुमार की रानी जो बनने वाली है।

अश्वतुंग—श्रेष्ठी, तुम्हारे साथ विवाह करने के लिए वह रण-बाँकुरी तूम्बी, जिसको मैं जिह्वा-स्खलन वश सूर्पनखा कह गया, व्याकुल है। तुम मानते नहीं, इसी झंझट के मारे द्वीप के इन दोनों समूहों के बीच में द्वन्द्व चल गया। आज प्रातःकाल जब धारा अपने योधाओं को लेकर बाहर जाने लगी, तब मैंने उससे इस विवाह-सम्बन्ध के विषय में सब बात कहदी थी। युद्ध को निरत करने का यही साधन है अब।

चन्द्रस्वमी—आपने क्या कह मारा है धारा देवी से ?

अश्वतुंग—बतला तो दिया।

चन्द्रस्वामी—सर्वनाश ! सर्वनाश !! मुझको आत्मवध करना पड़ेगा।

गजमद—क्या सचमुच इनके कहने में आगए ? लड़ाई तो कदली कुञ्जों और फलवाले वृक्षों के अधिकार निमित्त चलरही है।

अश्वतुंग—अरे भाई, तो वह भी तो इन्हीं के हेतु है। कारण तो यही हैं।

चन्द्रस्वामी—(*चैन की साँस लेकर*) मैं सचमुच भ्रम में पड़ गया था।

गजमद—बातों से तो पेट भरेगा नहीं; बहुत हो चुकीं, और मुस्ता भी लिए, अब चलो नाले पर।

अश्वतुंग—उन बाँसों के भिड़ों को देखो। इनकी जड़ों को खोदें और भून खायँ। सम्भव है नाले पर नागरमोथा खड़ा हो। उसके मूल का तो कहना ही क्या है। स्वर्ग लोक वाले भी तरसते होंगे उन जड़ों के लिए।

चन्द्रस्वामी—पेट भर खाने और पीने के उपरान्त फिर धारा देवी से भेंट प्राप्ति का प्रयास करने चल पड़ेंगे।

अश्वतुंग—उस निकटवर्ती पहाड़ी पर से निरख परख भी करेंगे।

गजमद—बाँसों के झुण्ड को आपने कब देख लिया?

अश्वतुंग—जब मैं अपने ऊपर हँस रहा था।

गजमद—पहले ही क्यों न बतला दिया? बतला देते तो यहां इतने समय तक सिर न पीटते।

अश्वतुंग—विश्राम जो लेना था।

(*सब जाते हैं*)

तीसरा दृश्य

[*स्थान—उसी द्वीप का दूसरा भाग। गुफा वाली पहाड़ी। अब उसके आसपास कुछ झोपड़े हैं। धारा फल खा रही है। उसके शरीर पर अब वे आभूषण नहीं हैं। अश्वतुंग आता है। कुछ दूरी से द्वीप वासियों की बातचीत की आहट आ रही है। धारा उठ खड़ी होती है। फल खाती रहती है। समय-संध्या के कुछ पहले।*]

अस्वतुङ्ग—तो क्या सम्पूर्ण द्वीप को वश करके ही रहोगी, देवी?

धारा—(*खाते खाते*) अवश्य। फल वाले वृक्ष उसी भाग में तो अधिक हैं।

अश्वतुंग—फिर तूम्बी के सङ्गी क्या खायेंगे ?

धारा—जो कुछ उनको प्राप्त हो जाय।

अश्वतुंग—आपकी होने वाली प्रजा होकर वे भूखों मरें !

धारा—मेरी नहीं, आपकी प्रजा।

अश्वतुंग—अस्तु, मेरी और आपकी—दोनों की। राजा का कर्तव्य है कि प्रजापालन करे। मेरे पूर्व पुरुषों ने अश्वमेध यज्ञ इसी सिद्धान्त के विस्तार के लिये किये थे।

धारा—पल्लवों ने ?

अश्वतुङ्ग—हां पल्लवों के पूर्वज वाकाटकों ने। वाकाटक पुरुष और नाग कन्या से पल्लव राज वंश चला।

धारा—अश्वमेध ! नाग कन्या !! अश्व को मारा और नाग—सर्प—की कन्या से विवाह किया !! आप कहते हैं पशु का बलिदान नहीं करना चाहिये, फिर अश्वमेध क्यों किया ?

(*धारा भोजन समाप्त करती है*)

अश्वतुंग—मेरे नाम का पहला भाग अश्व, अर्थात घोड़ा। तो क्या मैं घोड़ा हूं ?

धारा—(*हँसती हुई*) आप परिहास-प्रिय हैं सो बहुत अच्छा है, परन्तु अश्वमेध की बात को गुप्त मत रखिये।

अश्वतुंग—अपने अधिकार-क्षेत्र के बढ़ाने ने लिये पूर्व पुरुष सुसज्जित अश्वों को छोड़ देते थे। किसी प्रतिद्वन्दी राजा ने घोड़े को पकड़ लिया तो उसके साथ युद्ध छिड़ गया, उसको पराजित किया; बस, हो गया अश्वमेध और प्राप्त कर ली पदवी सम्राट की।

धारा—मैं भी यही कह रही हूं। उस दुष्टा तूम्बी को पराजित किये बिना न मैं रानी और न आप राजा।

अश्वतुंग—राजा के शरीर पर वस्त्र नहीं तो चिथड़े तब भी होते हैं, यहाँ मेरी इस दीन हीन देह पर तो पत्तों में भी विक्षेप है !

धारा—फिर कोई परिहास ! (*उसे ध्यान के साथ देखती हुई*) आप अश्व होते तो वास्तव में बड़े प्रबल सुन्दर अश्व होते।

अश्वतुङ्ग—और जो हाथी होता—गज ?

धारा—गज और अश्व का आपने वर्णन किया है और चित्र हा तो खींचे हैं। गज धीमा और आलसी, अश्व निरलस और तीव्र।

अश्वतुङ्ग—तूम्बी से सन्धि कर लीजिये। द्वीप के एक भाग पर उसको शासन करने दीजिये, शेष पर आप कीजिये।

धारा—मैं अश्वमेध करूंगी।

अश्वतुङ्ग—हूँ। ठीक है; तो मुझको छोड़ दीजिये—अश्व न सही अश्व-तुङ्ग से काम चल जायगा।

धारा—(*हँसती हुई*) बहुत वाचाल ! बहुत वाचाल !!

अश्वतुङ्ग—अच्छा तो बतलाइये कैसे निबटे यह समस्या ?

धारा—अश्वमेध के द्वारा, बस। लोहवाण की कृपा से !

अश्वतुंग—लोहवाण का मन्त्र बहुत दिनों काम नहीं देगा, अब हम लोग भूखों मरने लगे हैं।

धारा—कहाँ ? देवी इन फलों को तो लाई है।

अश्वतुंग—कहाँ से ? उसी भाग से न ? बिना युद्ध के नहीं मिले होंगे।

धारा—युद्ध के ही द्वारा मिले और मिलते रहेंगे। जबतक कि उस प्रतिनी तूम्बी को पूर्ण रूप से पराजित नहीं किया है तबतक यही क्रम रहेगा। आप लोहवाण लिये हुये भ्रमण भर करते रहिये। विजय मेरे हाथ में है। आपने फल नहीं खाये ?

अश्वतुङ्ग—नागरमोथा और बाँस के मूल खा चुका हूं, इसलिये फलों का संहार करके भविष्य को वर्तमान के गड्ढे में नहीं डालूँगा। (*धारा प्रश्नसूचक दृष्टि डालती है*) भूख नहीं है, कल के लिये रख लिये हैं। आप कल प्रातःकाल ही फिर युद्ध करने जायंगी ?

धारा—हां, आपको भी प्रातःकाल ही उठ जाना होगा और उन दोनों को आपके सङ्ग।

अश्वतुङ्ग—जो आज्ञा।

(धारा अश्वतुंग के गाल के पास तक चाँटे के लिये हाथ को तानकर लौटा लेती है और हँस पड़ती है)

धारा—पहले मैं अशिष्ट थी, परन्तु आचारों को जानती नहीं थी।

अश्वतुंग—अभी लग जाता तो सोचता तीन वर्ष पहले का सतयुग फिर आ गया।

धारा—सतयुग ?

अश्वतुंग—हां, अच्छा, भला, सुन्दर युग।

धारा—वह सतयुग ही था जब मैंने आपको पहले पहल देखा।

अश्वतुङ्ग—आपने सोचा होगा कोई बड़ा बन्दर आगया !

धारा—छिः ! बन्दर नहीं सुन्दर भारती मानव।

अश्वतंग—आपने अपने पिता से और मुझसे भारत के सम्बन्ध में सुना ही सुना तो है। जब देखेंगी आनन्द मग्न हो जायंगी।

धारा—बहुत छोटी थी तभी पिता के साथ यहां आ गई थी, इसलिये बाल्यावस्था का स्मरण नहीं है, और जब बड़ी होने पर सुना कि पिता को देश निष्कासन का दण्ड दिया गया था, तब बुरा लगा। परन्तु इस पर भी पिता भारत का यश-गान किया करते थे।

अश्वतुंग—मुझको भी यही दण्ड मिला और वैसे ही अपराध में। अन्तर यह है कि आपके पिता राजा नहीं हो पाये और मैं राजा होगया या होने वाला हूँ।

धारा—समझ में नहीं आया, आपने विवाह को स्थगित कर दिया है, विवाह करलें तो आज राजा बन जायँ।

अश्वतुंग—सोचता हूँ जब तक हमलोग वृक्षों पर चढ़कर वानरों की भांति न रहने लगें, तब तक मैं प्रजा में ही गिना जाऊँ। उस समय तक आप तूम्बी को पराजित भी कर लेंगी।

धारा—पल्लव वंश के महाराजकुमार ऐसी बात कहते हैं ! तूम्बी को तो मैं दो एक दिन के भीतर ही ढेर किये देती हूँ। एक व्यूह की रचना करूँगी जैसी आपने महाभारत की एक कथा में उस दिन सुनाई थी।

अश्वतुंग—मैं क्या जानता था कि उस कथा का यह उपयोग होगा। क्या नाग-पाश का व्यूह !

धारा—कुछ ऐसा ही। महाभारत की वह कथा क्या आपकी उस पूर्वजा नाग कन्या ने आपके पूर्व-पुरुषों को सुनाई थी ?

अश्वतुंग—पत्रों पर लिखी पढ़ी है, पुस्तकों में। कभी आप भी पढ़ना पुस्तकें भारत चलकर।

धारा—वह नाग कन्या किसी बड़े मोटे काले नाग की पुत्री थी या किसी श्वेत या लाल नाग की ? पहले यह बतलाइये, नहीं तो भूल जाऊँगी।

अश्वतुङ्ग—भूलती तो आप कुछ भी नहीं हैं। नाग अपने भारत देश में एक मानव वर्ग को भी कहते हैं। यह मानव वर्ग क्षत्रियों का है। हमारे पूर्वज वाकाटकों के पहले नागवंशी क्षत्रियों में बड़े बड़े राजा हो गये हैं।

धारा—उनका नाग नाम क्यों पड़ा ?

अश्वतुंग—इस द्वीप का नागद्वीप नाम क्यों पड़ा ?

धारा—सुना है कि इस द्वीप के निवासियों को बहुत बहुत वर्ष हो गये जब बड़े बड़े काले सांपों ने जन्म दिया था।

अश्वतुङ्ग—तो ऐसे ही बहुत बहुत युग हो गये तब नाग-वंशी क्षत्रियों के परम परम पितामह शेषनाग ने-विश्व के सबसे बड़े नाग ने-जिसके फन पर यह पृथिवी आधारित सुनी जाती है—किसी प्रकार जन्म दिया होगा, परन्तु यह किसी को ज्ञात नहीं कि शेषनाग का रंग किस भांति का है।

धारा—इसमें कोई व्यङ्ग ?

अश्वतुंग—अंशमात्र भी नहीं। केवल इतना और कहूँगा कि नागवंशी क्षत्रियों के किसी बड़े पूर्वज को साप ने डस लिया तो उसके पुण्यार्थी पुत्र ने सर्प मात्र के विध्वन्स के लिये यज्ञ का विराट आयोजन किया। फिर हुआ होगा मनमें पश्चात्ताप तो प्रायश्चित के लिये अपने वंश को नाग-वंश के नाम से प्रख्यात कर दिया।

(धारा उसकी ओर देखती है)

अश्वतुङ्ग—किसी पुराण में नहीं लिखा है, फिर कहीं ऐसा न हो कि कभी पुराण में ढूँढ़ती फिरो और न पाओ तो मेरे इन दूर्वाच्छादित गालों पर चाटे चपेटे की छुरिका का प्रयोग कर उठो !

(धारा हँस पड़ती है)

धारा—आगे कभी चाटे नहीं मारूँगी। आपतो नहीं मारोगे मुझको ?

अश्वतुंग—*(उसके दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर)* कदापि नहीं, कदापि नहीं। भारत में नारियों के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया जाता है। उनको बहुत सम्मान दिया जाता है और वे बड़ी शील वाली भी होती हैं।

धारा—*(धीरे से हाथ छुटाकर)* मैं भी शीलवाली बनूंगी। भारत की नारी को देखूँगी। भारत चलूँगी। कब चलोगे ?

अश्वतुंग—भारत दूर है और वहां बहुत समय तक नहीं जाऊँगा। यहा पूर्व-दक्षिण में *(हाथ से बतलाता है)* वारुण नाम का एक द्वीप है। जब कोई पोत मिल जायगा, तब वहां ले चलकर दिखलाऊँगा भारती-सन्तति को और उनके आचरण को। वारुण में भारत के अनेक जन रहते हैं। वहाँ हम लोगों को कुछ कपड़े मिल जायँगे।

धारा—परन्तु मैं आपके साथ फिर यहीं आजाऊँगी इस द्वीप का राज्य नहीं छोड़ूंगी। अश्वमेध करके चलूंगी। कब तक आवेगा पोत ?

अश्वतुंग—इसी पर्वत पर से कोई न कोई शोध लगाता रहता है। इन छत्तीस पूर्णमासियों में कोई भी पोत नहीं आया। जब आवेगा, तब विदित हो जावेगा।

(कुछ चिन्तित हो जाता है)

धारा—आप किस चिन्ता में हैं ?

अश्वतुंग—कोई विशेष चिन्ता नहीं है। पोत आ जावेगा तो पोत के अध्यक्ष को यात्राकर देना पड़ेगा, परन्तु अपनी गाँठ में कुछ नहीं है। इसी चिन्ता में था। देखा जायगा।

धारा—गांठ में कैसे नहीं है ? बाँस हैं, वृक्ष हैं, पर्वत और सरितायें हैं। अश्वमेध करने के उपरान्त अनेक कदली कुञ्ज और फल वाले पेड़ हाथ में आ जावेंगे। इनको देकर यात्राकर चुका देंगे। केवल दास नहीं दिये जा सकते। मलय नाम के देश से पोत में कुछ लुटेरे आये और नागद्वीप वासियों को बलात् पकड़ कर लेगये, तब से कोई भी विदेशी यहां आता है तो उसका नर-मेध कर दिया जाता है, ऐसा सुना है।

अश्वतुंग—मलय यहां से पूर्व में है।

धारा—जहां भी हो, द्वीप के वृद्ध जानते हैं।

अश्वतुंग—लोहबाण यदि और होते तो तूम्बी के समूह की पराजय अविलम्ब हो जाती। लोहे के अनेक बाणों को देखकर वे भयभीत हो कर आपके साम्राज्य को स्वीकार कर लेते।

धारा—तो बनाइये अनेक बाण; मैं विनय करती हूँ।

अश्वतुंग—यहां लोहे का पर्वत नहीं है।

धारा—तूम्बी वाले भाग में होगा। नाग-व्यूह की रचना करके उस को पराजित करूंगी। फिर लोहे के पर्वत से बाण बनवाऊँगी, आपका मेरा विवाह होगा। आपने भारती प्रथा बतलाई था। बतलाई थी न उस दिन ?

अश्वतुंग—मैंने जो कुछ बतलाया है वह सब करना।

(एक निकटवर्ती वृक्ष के पीछे गजमद आकर खाँसता है।)

गजमद—मैं आ सकता हूं महाराजकुमार के भोजनालय में ?

अश्वतुंग—आ सकते हो, यदि रसना-निग्रह कर सको तो।

(गजमद आता है और अश्वतुङ्ग के निकट रक्खे हुये फलों को देखता है)

गजमद—देवीजी और देवजी की जय हो। मुझको इस भव्य भोज की सुगन्धि तो मिल गई थी, परन्तु दर्शन नहीं हुये थे। *(फलों के निकट बैठ जाता है)*

धारा—दर्शन कर लिये, अब लम्बे बनो।

गजमद—यह हुआ लम्बायमान। *(लेट जाता है)*

धारा—परन्तु ये फल तो कल के लिये सुरक्षित हो गये हैं।

गजमद—*(बैठकर)* सुनिये देवी जी जैसे गिर का गुरुत्व उच्चता में है, वनकुञ्ज की गुञ्जता दुर्गमता में है, नदी की गम्भीरता गहनता में, राजा का पुरुषार्थ वंशावलि में, मेघ का महत्त्व जलवृष्टि में, कदली के आकर्षण का रस केलों में, कविता के कलत्व का महत्त्व शब्द योजना के संकलन में, उदारता की उज्वलता का परिमाण दान में है, उसी प्रकार इन फलों के मूल्य का यथार्थ अङ्कन इस उदर में पहुँचने पर ही हो सकेगा।

धारा—सब प्रलाप, कोरा प्रलाप।

गजमद—कल्पना को कुण्ठित मत करिये देवी जी।

(एक फल को उठाकर खाने लगता है)

अश्वतुंग—कह दूँ, तुमने दिन में आज इनके लिये क्या कहा था?

गजमद—*(खाते खाते)* मैंने क्या कहा था? *(दूसरे फल पर हाथ डालता है)*

अश्वतुंग—'छ' अक्षर से प्रारम्भ होने वाले शब्द की बात?

धारा—क्या कहा था इन्होंने?

गजमद—*(उठाये हुये फल को छुटकाकर और मुँह के अधचबाये ग्रास को बिना चबाये और निगले हुये, भयभीत स्वर में)* क्यों वैसे ही मरवाये डालते हो? कविता थोड़ी बहुत जाग रही है, उसको क्यों नष्ट करवाना चाहते हो?

अश्वतुंग—तुम तो कहते थे कि कविता मर चुकी है ।

गजमद—ऐसा तो मैं बहुत सा ऊटपटांग बक जाता हूं । देवी जी ने अभी अभी जो मेरी शब्दावलि को प्रलाप की संज्ञा दी । कुछ ऐसा ही प्रलाप किया होगा । कोई दूसरी चर्चा कीजिये, पल्लव कुल के ध्वज ! मैं अब और फल नहीं खाऊँगा ।

अश्वतुङ्ग—इस पल्लव कुल वाले के ध्वज ये रहे !

(वल्कलों पर हाथ फेरता है)

धारा—(*कुछ तीखे स्वर में*) क्या कहा था इन्होंने मेरे लिये ?

अश्वतुंग—इन्होंने कहा था कि—

गजमद—(*बात काट कर*) हा हा महाराजकुमार ! रक्षा करो !

अश्वतुंग—मरे मत जाओ । इन्होंने कहा था कि आपका छवि-छटा के वर्णन में इनका छन्द सिमिट सिमिट कर छिन्न हो जाता है, और फैल फैलकर सिमिट उठता है । आपके सौन्दर्य का वर्णन, प्रकृति का निरूपण करते करते अघाते ही न थे, भूखे पेट होने पर भी ।

(धारा के मुख पर उल्लास आ जाता है । गजमद प्रसन्न होकर छुटकाए हुये फलको उठा लेता है और खाने लगता है)

गजमद—तो मैने कुछ झूठ कहा था क्या ? जो कुछ कहा था सब सत्य था ।

अश्वतुंग—एक बात की कसर इन्होंने तो भी लगा दी थी ।

धारा—(*मृदुल स्वर में*) क्या ?

गजमद—(*आँखों से निवारण करके फल को चबाते चबाते*) अब जो कुछ कहोगे सब असत्य कहोगे, निरा प्रलाप ।

अश्वतुंग—यह कहते थे देवी जी कि आपके केश मुक्त हैं ।

गजमद—भगवान शङ्कर के जैसे ।

धारा—(*अपने केशों में उँगलियाँ फेरती हुई*) आप कहते हैं केशों में मज्जा को नहीं डालना चाहिये । मैं क्या करूं । क्या आपको ऐसे केश नहीं सुहाते ?

अश्वतुंग—मैं अपनी बात नहीं कहता हूँ, कविराज की कही कह रहा हूँ।

(गजमद तीसरा फल उठाता है)

धारा—कल तूम्बी के दल पर प्रचण्ड आक्रमण करूँगी, तभी अधिक फल प्राप्त हो सकेंगे। सम्भव है कल के युद्ध में उसके दल को समाप्त ही कर डालूँ।

गजमद—तो जब कल फलों की राशियों का आ जाना अनिवार्य है तो थोड़े से और खालूँ और कुछ उस श्रेष्ठी को दे दूँ जिसका पेट वास्तव में अब बढ़ता चला जा रहा है, परन्तु जो कहता यही रहता है कि पेट पटक गया! पिचक गया!!

धारा—ले जाइये।

गजमद—(*फलों को लेकर*) जय हो देवी जी! महाराजकुमार, इसी प्रकार रक्षा करते रहिये।

(जाता है)

धारा—जब इन्होंने मेरे रूप के सम्बन्ध में कुछ कहा तो आपने क्या कहा था?

अश्वतुङ्ग—जब मैंने कहा था कि आपके केश बहुत लम्बे हैं, भाल चतुर्थी के चन्द्रमा सदृश। आँखें बड़ी मीन की जैसी, नासिका आर्य नारी की, कन्धे पार्वती के जैसे, सम्पूर्ण शरीर सांचे में ढला हुआ सा। फिर अपने विषय में भी कुछ कहा था।

धारा—(*कोमल स्वर में*) क्या?

अश्वतुंग—यह कि मेरी दाढ़ी आपके केशों से होड़ लगाने की ही है। और—भारत के जङ्गलों में रीछ नाम का एक मनोहर जन्तु होता है—आपने सुना है न?

धारा—सुना है; आपने बतलाया था। मैं कुछ भी नहीं भूलती।

अश्वतुंग—तो अब इसको भी न भूलियेगा कि मैं रीछ बनता चला जारहा हूँ। (*धारा हँस पड़ती है*) और, इसी जन्म में पूरा रीछ बनकर ही मानूँगा।

धारा—सब परिहास ! क्या अन्य वार्ता भी परिहासमूलक ही थी ?

अश्वतुङ्ग—(स्नेह के स्वर में) नहीं थी, देवी। सब सत्य थी। (हँसते हुये) क्या आपको सन्देह है कि मैं किसी बात में भी गौतमी से कम हूँ ?

धारा—हिश ! हिश !! आप बहुत सुन्दर हैं।

चौथा दृश्य

[स्थान—पूर्वीय समुद्र का एक खण्ड। एक महायान आता है। उसके प्रांगण पर घेरे की डाँडियों के निकट गौतमी और कंदर्पकेतु खड़े हैं। आयु लगभग उन्नीस वर्ष हो गई है। केश-कलाप सँवारा हुआ, बहुमूल्य आभूषण, रंगीन कौषेय की साड़ी और भिन्न रंग की कंचुकी। कन्दर्पकेतु के वस्त्र स्वच्छ और श्वेत हैं। गले में स्वर्ण-हार पहिने है। हार की साँकल मोटी है। समय—सूर्यास्त के पूर्व]

गौतमी—किसी भी द्वीप या उपद्वीप का चिन्ह नहीं दिखलाई पड़ रहा है, रात्रि होने वाली है।

कन्दर्पकेतु—कोई चिन्ता नहीं बेटी, पवन वेग पर नहीं है, समुद्र शान्त है। यदि सूर्यास्त तक भूमि नहीं दिखलाई पड़ी तो समुद्र में ही लङ्गर डाल लिया जायगा और प्रातःकाल फिर चल पड़ेंगे।

गौतमी—महानाविक ने कहा था कि भूमि कहीं निकट ही है, पर अभी तक तो नेत्र गोचर हुई नहीं !

कन्दर्पकेतु—महानाविक के एक पिंजड़े के कऊये उड़ कर चले गये। अभी तक लौटे नहीं, इसलिये जिस दिशा में यान जारहा है उस दिशा में भूमि कहीं निकट अवश्य है।

गौतमी—भूमि आगई तो यान पर से उतर कर वहीं चलेंगे। थोड़ा सा भ्रमण ठीक होगा न ? यान में कक्ष और इस प्राङ्गण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है इसलिये मन ऊब उठा है।

कन्दर्पकेतु—इस द्वीप समूह के कुछ उपद्वीपों के निवासी क्रूर और मनुष्य-भक्षी हैं, संभव है भूमि के जङ्गलों में हिंस्र जन्तु हों। यान के नीचे नहीं उतरेंगे।

गौतमी—धान्यकटक के राजकुमार अश्वतुङ्ग का वध यहीं किसी द्वीप में हुआ होगा ?

कन्दर्पकेतु—हां, उसका और प्रसिद्ध श्रेष्ठी चन्द्रस्वामी का भी।

गौतमी—पल्लवेन्द्र इन द्वीपों को जीतकर अपने अधिकार में कर लें और मनुष्य-भक्षी द्वीपवासियों का दण्ड-नियन्त्रण करें।

कन्दर्पकेतु—करें तो, परन्तु चोलराज से उनकी लड़ाई लगी रहती है। इधर के लिये अवकाश और उतने साधन कहां ?

गौतमी—मलयकसेरु, सौम्य और वरुण द्वीपों में भी मनुष्य-भक्षी होंगे ?

कन्दर्पकेतु—वहां नहीं हैं और न इनके दक्षिणवर्ती यवद्वीप में भी। इन सब द्वीपों में भारती-सन्तति प्रचुर संख्या में फैली हुई है और आदिम निवासी भी सभ्य हैं। वहां खेलकूद होते हैं, नाटक होते हैं, गायन और नृत्य होता है। संस्कृति का प्रचार है।

गौतमी—अच्छा ! हां !! सुना था चम्पा में बहुत प्रचार है इन कलाओं का। चम्पा—कहाँ है ?

कन्दर्पकेतु—चम्पा वरुण के उत्तर में है।

(दोनों एक क्षण चुप रहते हैं)

गौतमी—(*समुद्र और सूर्य की ओर देखकर*) भूमि तो दिखलाई नहीं पड़ रही है, यान अब रुकने ही वाला है।

कन्दर्पकेतु—अभी तो प्रकाश है। यान अभी कुछ दूर और यात्रा करेगा।

गौतमी—लङ्गर पड़ जाय तो कुछ समय कीर्तन में कट जायगा।

(यान जाता है)

पांचवां दृश्य

[*स्थान—उसी द्वीप का एक जङ्गली पहाड़ी भाग। बीच में मैदान है, तीन ओर पहाड़ियाँ, चौथी ओर निकास है जिसमें होकर एक नाला गहराई खोदता हुआ सा चला गया है। एक पहाड़ी के ऊपर विशेष ऊँचाई वाला एक वृक्ष है। निकास वाले मार्ग से धारा के समूह के अनेक योधा, जिनमें कुछ स्त्रियाँ भी हैं, आते हैं और फैल कर पहाड़ियों में छिप जाते हैं। कुछ समय उपरान्त निकास के बाहर की दिशा में युद्ध का कोलाहल होता है। धारा इस निकास के मार्ग से कुछ योधाओं सहित भागती आती है। अपने योधाओं को सङ्केत करती है और वे निकास के दोनों पार्श्वों के टुङ्गों पर जा छिपते हैं। धारा खड़ी रहती है। निकास की दिशा से तूम्बी अपने योधाओं सहित आती है। उसको देखकर धारा पहाड़ियों की ओर भागती है। तूम्बी पीछा करती है। कुछ ही समय उपरान्त धारा अदृश्य हो जाता है। तूम्बी अपने साथी योधाओं को लिये हुये धारा की खोज करती है। निकास मार्ग पर तूम्बी के अन्य योधा चिल्लाते हुये और पुंगियां बजाते हुये आते हैं। निकास के पार्श्वीय टुङ्गों पर धारा के छिपे हुये योधा भी पुंगियां बजाकर शर-सन्धान करते हुये टुङ्गों पर से उतर पड़ते हैं। निकट से युद्ध होने लगता है जिसमें तीर कमठे काम नहीं लाये जाते हैं प्रत्युत लाठियां काम में आती हैं। पहाड़ियों में फैले छिपे हुये धारा के योधा पुंगियां बजा बजाकर उतर पड़ते हैं और युद्ध का घमसान मच जाता है। पहाड़ी के उस बहुत ऊँचे वृक्ष के निकट आग की ऊँची लौ पर लौ छूटती है और उसके उपरान्त एक ऊँचे बांस के सिरे पर बँधा हुआ वह लोहे का वाण चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है। तूम्बी के साथी लौ के छूटने और उस वाण की चमक को देखते हैं और शिथिल पड़ जाते हैं। निकास मार्ग पर बाहर से आने वाले तूम्बी*

के योधा पीछे लौट पड़ते हैं और भाग जाते हैं। पहाड़ियों से घिरे मैदान में तुम्बी और उसके योधा तीर कमठे, लाठियां नीचे डाल देते हैं और आत्म समर्पण करते हुये नीचे पड़जाते हैं। धारा सामने आ जाती है। उसकी आंखों मे करालता है। वह अपने योधाओं को पराजित शत्रुओं के बांधे जाने की आज्ञा देती है। लता गुल्मों से वे तुम्बी समेत उन सबको बांधकर ले जाते हैं। धारा अपनी पुंगी को हर्षमग्न होकर बार बार बजाती है ऊँची पहाड़ी के उँचे वृक्ष पर से बांस में बँधा हुआ लोहवाण उतार लिया जाता है उस वाण को हाथ मे लिये अश्वतुङ्ग गजमद के साथ आता है। समय-दिन]

गजमद
अश्वतुंग } —देवी महारानी की जय !

धारा—पल्लव महाराजकुमार की जय !

अश्वतुंग—अब ?

धारा—मैं व्यवस्था करने के लिये जाती हूं। आप निकास मार्ग पर वाण को लिये खड़े रहें। जब आप को मेरी बड़ी पुंगी का शब्द सुनाई पड़ तब आजायें। यदि यहां कहीं शत्रु का कोई योधा छिपा पड़ा होगा तो आपके चरणों में आगिरेगा। वाण को इसी प्रकार हाथ में लिये हुये उन लोगों को मेरे पास ले आईये। बड़ी पुंगी का शब्द आप शीघ्र सुनेंगे। मैं जाती हूँ।

अश्वतुङ्ग—(*बनावटी, दबे हुये स्वर में*) जो आज्ञा देवी जी।

(वह मुस्कराती हुई जाती है। अश्वतुङ्ग और गजमद निकास मार्ग पर जा खड़े होते हैं। अश्वतुङ्ग लोह वाण को एक निकटवर्ती वृक्ष की डाल से बाँध देता है जहां से वह दिखलाई पड़ता रहता है।)

अश्वतुंग—इस लोह वाण के रहस्य का प्रभाव अब समाप्ति पर आने वाला है।

गजमद—धारा देवी तो जान ही गई हैं कि पिघालाये हुये पत्थर से बने हुये लोहे का एक छोटा सा खंड ही तो यह वाण है। न इसमें कोई मंत्र है और न कोई देवदानव, फिर भी वह इसका पूजन कर उठतीं हैं!

अश्वतुंग—ज्ञानी विज्ञानी तक भय और विश्वास की घड़ियों के बीच में थर्रा जाते हैं और छोड़े हुये, भुलाये हुये, जड़ तथा अन्ध प्रतीकों को श्रद्धा भेंट कर उठते हैं; आशा करने लगते हैं कि इस साधन द्वारा सफलता प्राप्त हो जायगी। यह तो रही धारा के बोध की बात; रह गये द्वीप निवासी सो वे लोहे के शस्त्रों में देवता या दानव का वास क्यों न समझें? उसका सामना करने में असमर्थ जो हैं। और फिर यह वह वाण है जिसने उनके उस वयोवृद्ध प्रमुख को मार गिराया था जिसको वे अपने इस उप द्वीप का भगवान मानते थे।

गजमद—देवी जी का अश्वमेध सफल हो गया, अब अनायास फल, फूल, मूल, मिलने लगेंगे। वास्तव में द्वीप के इस खण्ड में यह खाद्य सामग्री इतनी प्रचुर है कि अपने ऊपर अकाल की विपत्ति कभी नहीं आवेगी।

अश्वतुंग—यदि द्वीप-वासी कभी अन्न उपजाने की क्रियायें ग्रहण करलें तो कभी अकाल पीड़ित न हों। भूमि उर्वरा है।

गजमद—अब व्यवस्था भी हुई जाती है।

अश्वतुङ्ग—उसी का आरम्भ करने गई हैं। मुझको शङ्का है कहीं व्यवस्था में अति न हो जाय।

गजमद—अब तूम्बी का क्या होगा?

अश्वतुंग—तुम्हारे साथ विवाह।

गजमद—गम्भीर विषय से तत्काल ही कैसे उथलेपन पर आ गये! मैं तो सीधी सी बात पूछ रहा हूँ। यहाँ कोई कारागार तो है नहीं। देश-निष्कासन का भी दण्ड असंभव है, क्योंकि निर्वासन के लिये यान और पोत तो क्या नाव या तरी भी नहीं है। तूम्बी को क्या उस गुफा में बन्द कर देंगी देवी जी?

अश्वतुंग – गुफा तो है हम तुम सरीखे रीछों के रहने का प्रासाद, भवन, आगार, जो जी चाहे कहलो उसको।

गजमद—तो क्या उसको शारीरिक दण्ड दिया जायगा?

अश्वतुंग—मुझको जिस बात का भय है कहीं उसका आयोजन न हो बैठे; अश्वमेध के उपरान्त नर-मेध का!

गजमद—नरमेध! हे भगवन!! आपसे संस्कृत सीख ली, प्राकृत सीखली, तो भी इन मेधों के प्रति देव जी के मन में ग्लानि और घृणा उत्पन्न न हुई होगी?

अश्वतुङ्ग—भाषाओं को पढ़ लेने से ही क्या होता है? मैंने कितने गुरुकुल और विद्यापीठों की धूल नहीं छानी थी? तुमने भी सरस्वती की कितनी वन्दना नहीं की? परन्तु उन दिनों मैंने और तुमने जो कुछ किया उस पर शिक्षा का क्या प्रभाव पड़ा?

गजमद—मैं तो आपका अनुचर मात्र रहा।

अश्वतुंग—और मैं अपनी वासनाओं का। तुम भी अपनी किसी वासना के।

गजमद—परन्तु नर-मेध या किसी भी प्रकार के मेध की वासना अब तो आपके या मेरे जी में नहीं है।

अश्वतुंग—बात देवीजी की हो रही है।

गजमद—(*कुछ विह्वलता के साथ*) रोकिये! महाराजकुमार, रोकिये नर-मेध को!! अन्यथा यह पाप-कलङ्क किसी भी प्रायश्चित से नहीं धुल सकेगा।

अश्वतुंग—एक ही उपाय है नरमेध को रोकने का। तुम्हारे हाथ में है।

गजमद—क्या? मैं करूँगा। अपना प्राण तक त्याग दूँगा।

अश्वतुंग—अजी नहीं, एक नरमेध को रोकने के लिये दूसरे नरमेध की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। तुम तूमी के साथ विवाह करलो। एक पन्थ दो काज।

गजमद—(*गिरे हुये मन से*) कर लूँगा। जीवन-निर्वाह तो करना ही पड़ेगा। वह चण्डी शान्त तो हो किसी प्रकार।

अश्वतुंग—कल छुकरी था, आज चण्डी होगई! अब तो देवीजी से कहे बिना नहीं मानूँगा।

गजमद—कल तो किसी भांति बात सध गई थी, मेरे ऊपर दया करो, और अधिक मत सताओ।

अश्वतुंग—अरे नहीं भाई। तुमको यह ब्याह न सुहाता हो तो चन्द्रस्वामी के साथ कर देंगे, नहीं तो नर-मेध की सारी हत्या उसी के सिर!

गजमद—नहीं, मैं ही कर लूँगा। (*निश्वास परित्याग करता है*)

(*धारा की पुङ्गी बजती है। अश्वतुङ्ग पेड़ पर से बाण को छुड़ा लेता है। दोनों जाते हैं*)

छठवाँ दृश्य

[*स्थान—उसी द्वीप का दूसरा खंड जहाँ अश्वतुङ्ग इत्यादि बाँधकर लाये गये थ। एक ओर तुम्बी लक्कड़ से बँधी पड़ी है। उसी के निकट उसके कुछ साथी उसी प्रकार बँधे हैं। कुछ दूरी पर लक्कड़ जल रहे हैं। द्वीप-वासियों का वैसा ही नृत्यगान हो रहा है। एक प्रमुख स्थान पर धारा खड़ी हुई है। वह किसी के आने की प्रतीक्षा कर रही है। आकृति भयङ्कर है। समय—सूर्यास्त के पूर्व।*]

(*धारा प्रबलता के साथ अपनी बड़ी पुङ्गी बजाती है। एक दिशा से अश्वतुङ्ग, उसके पीछे पीछे गजमद और चन्द्रस्वामी आते हैं। वे तीनों इस दृश्य को देखकर सन्न से रह जाते हैं। गजमद और चन्द्रस्वामी धारा पर अधीरता की दृष्टि डालकर नीचा सिर कर लेते हैं। अश्वतुङ्ग उसपर टकटकी लगाता है। द्वीपवासी नृत्य और गान को एक क्षण के लिये बन्द करके अश्वतुङ्ग को उसी प्रकार का प्रणाम करते हैं जैसा इसी स्थल पर अश्वतुङ्ग इत्यादि के पकड़*

लाये जाने के पीछे उन्होंने धारा को किया था। धारा निश्चल है। उसके निकट एक वृक्ष के नीचे फलों का ढेर लगा रक्खा है।)

अश्वतुंग—देवी जी !

धारा—महाराजकुमार !

अश्वतुंग—यह क्या होने जा रहा है ?

धारा—अपराधियों को दण्ड दिया जाने वाला है। व्यवस्था स्थापित हो गई है।

अश्वतुंग—कौन सा दण्ड ?

धारा—पहले वन्दियों के माथे पर भस्म का टीका लगाया जायगा, फिर एक एक को मुक्त करके लाठियों से पीटते पीटते गिरा दिया जायगा, तत्पश्चात् क्रम क्रम से उस अग्नि में डाल दिये जायँगे।

अश्वतुंग—फिर ?

धारा—फिर मेरा—आपका राज्य घोषित कर दिया जायगा। इसके आगे की बात आपके हाथ में है—मेरा—आपका विवाह होगा।

अश्वतुंग—उस दिन जब हम सब यहाँ बाँधकर लाये गये थे तब क्या हमारे लिये भी यही आयोजन था ?

धारा—निस्सन्देह था।

अश्वतुंग—फिर आपने दया करके हम सबको बचा दिया। क्यों बचा दिया था ?

धारा—दया ने नहीं बचाया था, मेरे उमड़े हुये प्रेम ने प्रेरणा की थी।

अश्वतुंग—धन्य हो देवी ! मैं आपके पराक्रम को जानता हूँ और प्रेम को भी जानने लगा हूँ; पूछता हूँ, आप भी किसी अन्य के प्रेम को जानती हैं ?

धारा—किसके ?

अश्वतुंग—नरमेध के पहले क्रम क्रम से आप वन्दियों को मुक्त करेंगी, फिर लाठियों द्वारा कपाल-क्रिया होगी, तब कुछ और। तो तूम्बी से ही आरम्भ कीजिये।

धारा—मैंने भी यही निर्धार किया था। परन्तु आपने प्रेम-सम्बन्धी जो प्रश्न किया है उसका प्रयोजन?

अश्वतुंग—बतलाऊंगा, पहले उसको बन्धन-मुक्त करिये।

(धारा अपने एक योधा को आज्ञा देती है। वह तूम्बी को मुक्त करता है। तूम्बी शरीर के पीड़ित अङ्गों को थोड़ा सा दाबती हुई अँड़गाई लेकर खड़ी हो जाती है जैसे कुछ हो ही नहीं। उसकी दृष्टि में उपेक्षा है)

धारा—*(अश्वतुंग से)* अब कहिये। इसके माथे पर भस्म लगाई जाय?

अश्वतुंग—तूम्बी के माथे पर भस्म लगाने के पूर्व थोड़ी सी मेरे इस मित्र के *(गजमद के कन्धे पर हाथ रखके)* माथे पर लगाइये। प्रेम के विषय का इन्हीं से सम्बन्ध है और उसका प्रयोजन यह तूम्बी है।

(तूम्बी की आंख में अकचकाहट आजाती है। वह समझ गई है कि अश्वतुंग की वार्ता का विषय वह है, परन्तु समझने का प्रयास कर रही है कि विषय की वस्तु क्या है।)

धारा—*(ढलेहुये स्वर में आश्चर्य के साथ, होठों पर थोड़ी सी मुस्कान भी आ गई है)* ऐं! क्या!! मैं ठीक ठीक नहीं समझ पा रही हूँ।

अश्वतुंग—इस द्वीप की सम्पूर्ण वर्तमान कलह के मूल में प्रेम और विवाह है, जिसके साथ द्वीप की मुखियाई की समस्या भी बीधी हुई है। प्रेम के प्रसाद को प्राप्त करने की मनोवान्छा तूम्बी के मनमें उदय हुई, और मेरे मित्र महाशय गजमद ने तो जन्म ही प्रेम के साथ लिया है। *(धारा के होठों पर मुस्कान बढ़ने लगती है)* तूम्बी को पति चाहिये और गजमद को पत्नी। देखिये, संकोच और लज्जा के

मारे कितने नत-मस्तक हो गये हैं ! यद्यपि इस द्वीप या उपद्वीप में लाज सङ्कोच का कोई उपयोग नहीं है।

धारा—क्या यह यथार्थ है ?

अश्वतुंग—शत प्रतिशत यथार्थ है। इनसे पूछ लीजिये।

धारा—गजमद जी, आप अपने मुख से कहिये। महाराजकुमार कभी कभी परिहास कर बैठते हैं।

गजमद—(*नत-मस्तक निश्वास परित्याग करके*) यथार्थ ही कहते हैं, मैं विवाह करूँगा तूम्बी के साथ।

अश्वतुंग—अजी कुछ उभककर उत्साह के साथ बोलो। बलिदान के बकरे की भाँति क्यों दुबक कर रह गये ?

गजमद—(*गिरे स्वर में*) कह तो दिया।

अश्वतुंग—तुम तो ऐसे बोले जैसे तुम कोई भारती कन्या हो और तूम्बी पुरुष। अस्तु, देवी जी; अब आप तूम्बी से पूछें।

(*धारा तूम्बी से द्वीप की भाषा में विवाह का प्रस्ताव प्रस्तुत करती है और बतलाती है कि नरमेध से बचने का यह उपाय बहुत सहज और सुलभ है। तूम्बी सुनकर तमतमा जाती है। कई बार नाहीं द्योतक सिर हिलाती है*)

तूम्बी—ना ! ना !! ना !!! ना !!!! ना !!!!! (*जलती हुई लकड़ियों की ओर हाथ उठाकर सङ्केत करती है कि मर जाने के लिये तैयार है*)

धारा—यह तो नाहीं करती है।

अश्वतुंग—कदाचित चन्द्रस्वामी के साथ विवाह करने को तैयार होजाय, कहिये श्रेष्ठी जी, क्या इच्छा है ?

(*धारा को हँसी आने लगती है*)

चन्द्रस्वामी—अरे छिः ! इस मनुष्य भक्षिणी के साथ विवाह करूँगा ! अपने कवि को द्रवित कर लिया होगा मूर्ख बनाने के लिये; मैं नहीं बनने का। पीठ फेरे लेता हूँ, आँख मूँदे लेता हूं और कान बन्द

किये लेता हूं फिर चाहे जो कुछ होता रहे। इस नरमेध के समय मेरा उपहास !!!

अश्वतङ्ग—(*अपनी छाती पर हाथ रखके*) देवी जी, तो क्या इस रीछ को आदेश दोगी तूम्बी के साथ विवाह करने के लिये ?

(*अश्वतुङ्ग के मुँह से अपने नाम का उच्चारण सुनकर तूम्बी सतर्क होती है और धारा हँस पड़ती है*)

अश्वतंग—आज्ञा दीजिये, आज्ञा दीजिये ! आप तो हँस रही हैं।

धारा—(*हँसी को नियन्त्रित करके गम्भीरता के साथ*) तूम्बी को छोड़ने के साथ, अन्य वन्दियों को भी मुक्त करना पड़ेगा ?

अश्वतंग—आपकी विजय हो गई। अश्वमेध हो चुका। आपका यह अश्व, लोह-बाण को लिये हुये लौट आया और सेवा में उपस्थित है।

(*धारा फिर हँस पड़ती है*)

धारा—तो आप ही बतलाइये, क्या किया जाय। इनको यों ही छोड़ देती हूँ तो ये फिर विद्रोह कर उठेंगे। आपही ने कहा था कि प्रारम्भ की हार का मूल्य देश को बहुत दिनों चुकाना पड़ता है, सो उसको चुकाते चुकाते तीन वर्ष हो गये हैं। अब बतलाइये क्या किया जाय ?

अश्वतुंग—इनके उस द्वीप खण्ड पर अपने चौकी पहरे पहुँचा दीजिये जहाँ कदली कुञ्ज और फल वाले वृक्ष हैं और इन लोगों को अपने अधिकार में यहां भ्रमण करने दीजिये जहां चूहे, कउए, बिलाव इत्यादि प्रचुर संख्या में हैं। इस खण्ड में भी आप अपने कुछ योधाओं को छोड़ दीजिये जो इनको विद्रोह करने पर उद्यत न होने दें। और फिर सौ बात की एक बात यह कि उससे कह दीजिये कि आपका सेवक उसके साथ विवाह करने योग्य नहीं है, किसी द्वीपवासी से कर ले।

धारा—(*हँसकर*) मान गई, मान गई। यह भी कहे देती हूं कि आपका विवाह मेरे साथ होगा।

अश्वतुंग—उसका निर्धार तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने मेरे पूर्व जन्म में ही कर दिया था। आप कुछ फल गजनद जी को दीजिये। पत्नी नहीं मिली तो दान को फल ही मिल जाये।

(धारा वृक्ष के नीचे रक्खे हुये फलों को अपने हाथ से गजमद को देती है। वह उदास मुख होने पर भी खा उठता है)

गजमद—आप बहुत दुष्ट हैं महाराजकुमार ! *(अश्वतुङ्ग सिर नीचा कर लेता है)*

(धारा गजमद की मुद्रा और अश्वतुङ्ग के किसी अनजाने छल छद्म की कल्पना करके और भी हँसती है)

धारा—यह कुतूहल आपने कब रचा था ?

गजमद—लीजिये ! प्रकृति के झंझावात को, प्रकृति में जो स्वाभावतः होता रहता है, उसको आप कुतूहल कहती हैं !! अब उन बन्दियों को भी मुक्त कर दीजिये। इतना बन्धन ही उनके लिये पर्याप्त दण्ड है। नरमेध को सदा के लिये बन्द करिये।

धारा—कोई आक्षेप नहीं मुझको। इनसे बचन ले लूं। मैं इनकी शपथ को जानती हूं। शपथ को भङ्ग नहीं करेंगे।

(गजमद चुप चाप फल खाता रहता है)

धारा—आप लोह बाण को हाथ में लेकर ऊपर उठा दीजिये।

अश्वतुंग—जो आज्ञा !

धारा—*(मुस्कराकर)* फिर वही !!

(धारा अपने साथियों को निकट बुलाती है। उनसे कुछ कहती है। वे अश्वतुंग की ओर देखकर आज्ञा पालन और सहमति का सिर हिलाते हैं। धारा तम्बी और वन्दियों से उनकी भाषा में कड़ी पड़कर बोलती है। वह उनसे कोई शपथ ले रही है। वे सौगन्ध खाते हैं और मुक्त कर दिये जाते हैं। वे सब उसी प्रकार का प्रणाम करते हैं। तम्बी धारा के पैरों पर गिर पड़ती है। वह उसको उठा लेती है। उठने पर वह नतमस्तक खड़ी हो जाती है। उसके समूह वाले उसी प्रकार हाथ उठाये हुये वहाँ से चले जाते हैं। धारा अपने अनुयाइयों को बिखर जाने का आदेश देती है। वे उनके पीछे, दलों दलों में चले जाते हैं।)

अश्वतङ्ग—यह आपकी सेवा सहायता करेगी।

धारा—मुझको छोड़कर नहीं जाना चाहता। इसको साथ रखने में द्वीप की कुशल भी रहेगी।

अश्वतंग—अश्वमेध की समाप्ति पर अपने भारत में भी यही होता है—चक्रवर्ती राज्य स्थापित हो जाता है। तूम्बी के आपकी शरण में आ जाने से आपका मानो चक्रवर्ती राज्य स्थापित हो गया। अब अपने समूह में से किसी के साथ उसका ब्याह कर दीजिये। टंटा पट जायगा।

धारा—एक व्यक्ति के साथ विवाह होने से तो टंटा और भी बढ़ जायगा। विवाह होगा एक पुरुष के साथ और उस पुरुष के सम्पूर्ण सम-वयस्क उस स्त्री के पति हो जायेंगे। द्वीप की परम्परा है।

अश्वतंग—हे भगवान शंकर, तुम्हारी सृष्टि को नमस्कार है! मेरी रक्षा करो!!

(धारा किसी परिहास की प्रतीक्षा में उसकी ओर मुस्कान के साथ देखती है। गजमद अब भी फल खाने में व्यस्त है। चन्द्रस्वामी ललचाई आँखों उसकी ओर देख रहा है। उसको देख कर धारा की मुस्कान और भी प्रस्फुटित होती है)

अश्वतुंग—*(चन्द्रस्वामी और गजमद की ओर देखते हुये)* अश्वमेध की वास्तविक सफलता तो इनके हाथ और मुँह में है। कुछ थोड़े से श्रेष्ठों को भी दीजिये, जो भूखों के मारे ऐसे एकाग्रचित्त हो रहे हैं!

(धारा कुछ फल चन्द्रस्वामी को भी देती है। वह खाने पर जुट जाता है)

अश्वतंग—अब इस वाण को मूठे में रख लूँ?

धारा—अरे! मैं तो भूल ही गई थी। आप हाथ नीचा कीजिये और मूठे में रख लीजिये।

(अश्वतुंग वैसा ही करता है)

अश्वतुङ्ग—लोह वाण के दो रूप हैं—एक विधाता और दूसरा त्राता। अब इसके त्राता रूप की आराधना होनी चाहिये।

धारा—ऐसा ही होगा।

(एक द्वीप वासी हाँफता हुआ आता है)

द्वीपवासी—पोत ! पोत !! पोत !!! *(हाथ से एक पर्वत के पीछे की दिशा में सङ्केत करता है)*

(चन्द्रस्वामी उछल पड़ता है गजमद प्रसन्न है, अश्वतुंग और धारा गम्भीर मुद्रा में एक दूसरे को देखते हैं)

धारा—रात्रि हो चुकी है। अपने आवास पर चलिये। भोर होते ही देखूँगी।

अश्वतुंग—आप नहीं, हम देखेंगे। आप हम लोगों के साथ रहना, कुछ ओट में। युद्ध नहीं करना है, पोत वालों से बात करनी है। समझीं आप ?

धारा—*(मुस्कराकर)* जो आज्ञा।

अश्वतुंग—*(हँसकर)* कभी कभी आज्ञा का क्रम लौट पलट खा जाता है।

सातवां दृश्य

[स्थान—उसी द्वीप का वह पहाड़ी भाग जहां धारा की गुफा। धारा, अश्वतुङ्ग, चन्द्रस्वामी और गजमद आते हैं। धारा बहुत प्रसन्न है। अश्वतुङ्ग इत्यादि भी। समय—सन्ध्या के उपरांत।]

धारा—इस द्वीप में विवाह की प्रथा विलक्षण है। वधू को एक नई झोपड़ी में बिठला देते हैं। फिर वर को खोजते हैं। वर बहुत लज्जा प्रकट करता है, जङ्गल को भाग जाता है। मित्र उसको पकड़ लाते हैं और झोपड़ी में ले जाकर वर को वधू की गोदी में बिठला देते हैं। बस, विवाह हो जाता है।

अश्वतुंग—बढ़िया है, बहुत बढ़िया। सर्वथा नाटकीय। होने दीजिये तुम्बी का। बड़ा मनोरञ्जन होगा।

धारा—या मेरा और आपका ?

गजमद—
चन्द्रस्वामी— } *एक साथ*] हो जाय, अभी हो जाय !
फिर भोर होते ही पोत पर !!

अश्वतंग—तो मैं जङ्गल की ओर भागूँ ? ऐसा न हो कि रक्षा के लिये किसी वृक्ष पर चढ़े चढ़े रात काटनी पड़े ?

गजमद—हम दोनों पीछे पीछे चलते हैं, पकड़ लावेंगे।

अश्वतुंग—तो पहले लाज-सङ्कोच प्रकट करूँ। (*लाज-सङ्कोच प्रदर्शित करने लगता है*) जैसे ये तीन वर्ष बिना विवाह के बीत गये वैसे ही शेष जीवन भी बीत जाय, पर भगवन्, मेरा विवाह न होने पावे ! सङ्कटपूर्ण कण्टकाकीर्ण विवाह-पथ का निवारण करना भोलानाथ महादेव ! और इस दीन रीछ के बाल इतने लम्बे कर देना कि वह मधु-मक्खियों के दांतों और डङ्कों, दोनों, से बचा रहे। यह चला मैं जङ्गल को।

(*जाता है*)

गजमद—
चन्द्रस्वामी— } *एक साथ*] और हम आते हैं पकड़ने को।

(*दोनों जाते हैं*)

(*धारा ताली बजाती है। कुछ क्षण उपरान्त तुम्बी और धारा के समूह वाले अनेक द्वीपवासी आ जाते हैं। उनके हाथों में दीपदण्ड हैं*)

धारा—एक नई झोपड़ी बनाओ, मेरा विवाह होगा।

(*द्वीपवासी नाचने गाने लगते हैं। कुछ जाकर झोपड़ी बनाने का सामान ले आते हैं और झोपड़ी को खड़ा कर देते हैं। धारा उसमें जा बैठती है। वह दिखलाई पड़ती रहती है। चन्द्रस्वामी और गजमद अश्वतुङ्ग को पकड़े हुये लाते हैं। अश्वतुङ्ग उद्धार का बनावटी प्रयत्न करता है।*)

अश्वतुंग—छोड़ दो ! छोड़ दो !! मुझको ब्याह नहीं करना है अरे, मैं निपट भोलाभाला उल्लूबसन्त हूँ !!!

गजमद—कैसे नहीं करना है ! हँसीठट्ठा है !! ऊषा की रश्मियों में फँस गये हो बच्चू !!! अब उसकी गोदी में, समेटकर, बिठलाये जाओगे ।

(वे दोनों उसको उठाकर नई झोंपड़ी में ले जाना चाहते हैं । धारा हँसती है)

अश्वतंग—अरे तो क्या एक दुबला सुखड्ड और दूसरा मुटल्ला बन्दर, रीछ को यों ही दबा लेंगे ?

(झटका देकर उन दोनों को हटा देता है और कुटी के द्वार पर आ जाता है)

अश्वतुंग—देवी जी, यहाँ तक तो द्वीप की विवाह-प्रथा का नाटक ठीक रहा, परन्तु आगे का मार्ग बहुत सुविधापूर्ण नहीं है । आपकी गोदी और ऊषा की रश्मियों का अञ्चल रीछों की गुफा नहीं है ।

धारा—परन्तु यह तो इस द्वीप की प्रथा है । अपने समूह वाले हर्षमग्न हो जायँगे ।

अश्वतंग—मेरी साँसों में चाहे गाठें ही क्यों न लग जायं ? तो देवी जी, अभी सूर्यास्त के पहले आपने इस द्वीप की एक परम्परा और बतलाई थी – कि, वर के सारे समवयस्क पुरुष वधू के पति बन जाते हैं । ये दोनों मेरे यथार्थ समवयस्क तो नहीं हैं परन्तु मित्र तो हैं ही—क्या आज्ञा है ?

(धारा तिनकका झोंपड़ी के बाहर आ जाती है)

धारा—*(तीव्र स्वर से)* यह आर्य परम्परा नहीं है ।

अश्वतंग—मैं हर्ष के साथ आपका समर्थन करता हूँ; परन्तु आप तो द्वीप की परम्परा की बात कह उठी थीं । अच्छा हुआ आपको आर्य परम्परा का स्मरण ठीक समय पर हो आया । *(गजमद और चन्द्रस्वामी से)* क्योंजी, यदि तुममें से किसी के साथ तूम्बी का विवाह हो जावे, तो तुम किस परम्परा का अनुसरण करो ।

गजमद—
चन्द्रस्वामी— } *एक साथ*] छिह ! छिह !!

अश्वतुंग—तो देवी जी, आर्य परम्परा के मूर्त होने की प्रतीक्षा कुछ समय तक और करनी होगी। पहले तो बड़े भोर उस आये हुये पोत का अनुसन्धान करना है। अब अपने आवास को चलें। चलिये, देवी जी।

(वे सब जाते हैं। द्वीप निवासी निराश से जाते हैं)

आठवाँ दृश्य

[स्थान—इसी द्वीप का समुद्र तट जहां पहले पहले अश्वतुङ्ग समुद्र से रेती पर आपड़ा था। पवन कुछ वेग के साथ बह रहा है। दूरी पर समुद्र हिलोड़ों में है। तट के निकट अपेक्षाकृत शान्ति है। एक यान किनारे आकर उसी रेती के पास लङ्गर डाल देता है। यान के पाल गिरे हुये हैं। प्राङ्गण पर जय, महानाविक, कन्दर्पकेतु, गौतमी इत्यादि खड़े हैं। समय—प्रातःकाल के उपरान्त।]

महानाविक—यही है वह स्थान। यही है वह स्थान !! जहां से हम रात के समय पोत को लेकर भागे थे। यही है वह उपद्वीप जिसमें मनुष्य-भक्षी रहते हैं और जहां राजकुमार, चन्द्रवर्म्मा और गजमद मार डाले गये। यह रही वह चट्टान जिसके पीछे मैं आ छिपा था और जहाँ मेरे वन्दी साथी मुझको आ मिले थे !! यहीं मैंने प्रण किया था कि यानों भर-भर सेना ले आऊंगा। हा ! न ले आ पाया !!

जय—इस द्वीप में निवास के लिये कुछ है ?

महानाविक—हम लोगों ने कुछ नहीं देखा। काठ की टेढ़ी-मेढ़ी बल्लियों पर फूसपत्तों के छाये हुये घोंसले भर देखे थे।

जय—अपनी भाषा को समझने वाला होगा कोई इनमें ?

महानाविक—असम्भव।

जय—तुम और तुम्हारे नाविक तो जानते हैं यहां की भाषा को ? चलो द्वीप में। प्रभन्जन अभी तो और बढ़ेगा। संभव है कई दिन लेले। तबतक धर्म-प्रचार के कार्य के लिये चलो मेरे साथ।

महानाविक—मेरे बस का नहीं है। मोटे लक्कड़ से लता बेलों की गाँठों द्वारा कसे-जकड़े जाकर पेड़ से टिकाये जाने की साध मेरे मन में नहीं है। हाँ धनुषवाण और खड्ग से सज्जित होकर चलने की अनुमति दें, तो मैं, मेरे साथी और अन्य योधा अभी उतर पड़ेंगे। ये द्वीपवासी केवल धनुष-वाण और खड्ग के धर्म को पहिचानते और मानते हैं।

जय--लोहा से लोहा कटता है, परन्तु हिंसा से हिंसा नहीं कट सकती।

महानाविक—तो उतर पड़िये और कर आइये द्वीप का भ्रमण। पटिये डाले देता हूं। परन्तु यदि आप अपने मनोरथ में विफल हुये तो हमारा कोई अपराध नहीं।

जय—मैं इस द्वीप की भाषा को सीखकर फिर आऊँगा, परन्तु आऊँगा एक दिन अवश्य। मारे जाने का मुझको कोई भय नहीं है, और न मेरे साथियों को, किन्तु भाषा-ज्ञान के साधन बिना द्वीप में जाना निरर्थक होगा।

गौतमी—द्वीपवासियों को चारों ओर से घेरकर निश्शस्त्र कर दिया जाय और फिर उनको धर्म के द्वारा शोधा जाय।

जय—धर्म वाण की नोक पर बैठ कर नहीं चलता, उसको नंगे पैरों भ्रमण करना पड़ता है।

(द्वीप से 'हा हा ही हो' गान के शब्द सुनाई पड़ते हैं)

महानाविक—जान पड़ता है कि द्वीपवासी हमारे यान का समाचार पाकर यहीं आरहे हैं। जाइये अपने अपने कक्षों में। यान को हम समुद्र में लेजा नहीं सकते, क्योंकि प्रभन्जन तीक्ष्ण प्रगति पर है। हमको अपनी रक्षा करनी पड़ेगी।

(यान के निचले भाग से कुछ सशस्त्र योधा ऊपर आजाते हैं)

एक योधा—हमारे राजकुमार को इन्होंने ही मारा था, हम इनका विध्वन्स किये बिना नहीं मानेंगे।

महानाविक—तुम लोग वारुण द्वीप में बसने के लिये चल रहे हो या इसी उपद्वीप में खप जाना चाहते हो ? कहो तो हम तुमको यहीं उतारदें ? यदि द्वीपवासियों ने यान पर आक्रमण किया तो हम प्रत्युत्तर देंगे, अन्यथा नहीं लड़ेंगे। क्या कहते हो ? बोलो !

(योधा एक दूसरे का मुँह ताकने लगते है)

जय—क्रोध में विवेक को भ्रष्ट मत करो। देखें तो वे यहां आकर क्या करते हैं। सोचो, उस उपद्वीप से तुम्हारा उद्धार रक्त पात को बढ़ाने के लिए नहीं किया गया है।

(योधा नीचे चले जाते है)

कन्दर्पकेतु—चलो बेटी नीचे।

गौतमी—मै देखना चाहती हूं कैसे होते हैं मनुष्य भक्षी।

कन्दर्पकेत—तो ओट में होकर देख लेना, यहाँ से तो चलो। महानाविक का आदेश है। हठ मत करो।

(वे दोनों ओट मे चले जाते हैं)

महानाविक—भिक्षुवर, आप भी ओट लेलीजिये। द्वीपवासियों के वाण विषाक्त होते हैं।

जय—मैं पाल के खम्बे के पीछे खड़ा हुआ जाता हूँ। नीचे नहीं जाऊँगा।

महानाविक—जैसी आपकी इच्छा। मैं तो ओट लेकर खड़ा होता हूँ।

(महानाविक भी ओट लेलेता है। द्वीप-वासियों का गान दूर होता चला जाता प्रतीत होता है। पवन उसी दिशा में बह रहा है, इसलिये ठीक अभास नहीं होता कि गान यान के निकट आरहा है या दूर होता चला जारहा है। कुछ क्षण उपरान्त गान मन्द पड़ते पड़ते सर्वथा शान्त होजाता है। वन में से अश्वतुङ्ग, गजमद और चन्द्रस्वामी आकर रेती पर खड़े होजाते हैं, यान को देखते है। कोई नहीं दिखलाई पड़ता।)

चन्द्र वामी—(*धीमे स्वर में*) इस अभागे यान की भी प्रभन्जन ने वही दुर्गति की जो मेरे यान का की थी। मेरा मिट गया, यह बच गया! ठीक उसी आकार प्रकार का यान यह भी है। इस पर पल्लवेन्द्र की पताका है। नजाने इसके यात्री कितनी सम्पत्ति न छोड़ मरे होंगे। हाय! हाय !!

(*महानाविक और जय झाँककर देखते हैं*)

अश्वतुंग—तो चढ़ जाओ और खे लेजाओ यान को कहीं, मैं तो दर्शन मात्र से तृप्त हो गया।

चन्द्रस्वामी—इस आँधी और उत्ताल तरङ्गों वाले समुद्र में! मैं अकेला खे लेजाऊँगा !!

अश्वतुंग—गजमद को लेजाओ, बड़े साहसी हैं।

गजमद—अग्नि समाधि से बचे तो जल समाधि लें!

अश्वतुंग—विवाह-समाधि से भी तो बचगए!

महानाविक—(*जय से*) इनके वल्कल वसनों पर लम्बी दाढ़ियाँ तो हैं, परन्तु सशस्त्र तो एक भी नहीं! (*कुछ ध्यान के साथ देखता हुआ*) और लम्बे भी बहुत हैं !!

जय—प्राङ्गण पर चढ़ा, महानाविक। व्यर्थ का भय है।

(*जय प्राङ्गण के घेरे पर आता है। उसके पीछे महानाविक*)

चन्द्रस्वामी—(*धीमे स्वर में*) यह तो महानाविक है! और भी कई हैं इस में !!

गजमद—और दूसरा वही भिक्षु! नागार्जुनी कोण्डा वाला भिक्षु !!

महानाविक—ये लोग परस्पर कुछ बात कर रहे हैं।

(*आँख गड़ाकर देखता है और द्वीप की बोली के कुछ टूटे फूटे शब्दों में प्रश्न करता है कि यहाँ क्यों आये हो ?*

चन्द्रस्वामी—महानाविक!

गजमद—महानाविक !! जय भिक्षु !!!

(अश्वतुङ्ग चुप है। महानाविक और जय पहिचानने का प्रयत्न करते हैं, परंतु नहीं पहचान पाते।)

चन्द्रस्वामी—यह पोत किस का है महानाविक अवन्तिसेन ? इसके वे यात्री कहाँ हैं ? क्या तुमने मुझको नहीं पहचान पाया ?

अश्वतुंग—सब रीछ एक से होते हैं। मनुष्य कैसे पहचान सकता है उनको ?

चन्द्रस्वामी—मेरा नाम चन्द्रस्वामी है। यह पोत किसका है ?

अश्वतुंग—काठ का, लोहे के कीलों का और जिसके हाथ लग गया उसका।

महानाविक—एँ ! श्रेष्ठी चन्द्रस्वामी ! संशय तो होता है। आंख, नाक, ऊँचाई सब वही है। गोलाई कम होगई है, परन्तु यह दाढ़ी ! और ये वल्कल !!

अश्वतङ्ग—स्वस्थ हो गये हैं अब श्रेष्ठी।

महानाविक—और यह कौन महाराजकुमार अश्वतुङ्ग ! क्या हम प्रेतों को देख रहे हैं या जीते जागते मनुष्यों को !!

अश्वतुंग—एक प्रेत यह और है ! रौरव से इसी घड़ी बाहर हुआ है।

महानाविक—आश्चर्य ! महान आश्चर्य !! बच गये क्या तुम सब ? कैसे बचे ?

(यान के नीचे से अन्य यात्री आ जाते हैं। ओटों से गौतमी और कन्दर्पकेतु भी।)

अश्वतुङ्ग—कौन कहता है कि बच गये ? प्रेत हैं प्रेत ! प्रेत लोक से अवतरित हुये हैं हम तीनों !! मिलजाओ हम मे !!!

(जय के होठों पर हलकी सी मुस्कान आती है)

गौतमी—ये कौन लोग हैं पिताजी ? ये तो अपनी भाषा में बोल रहे हैं !!!

(महानाविक बहुत हँसता है। कठिनाई के साथ हँसी का नियन्त्रण कर पाता है।)

महानाविक—(*हँसी को रोकते हुये*) यह महाराजकुमार अश्वतुङ्ग हैं, यह श्रेष्ठी चन्द्रस्वामी और वह विदूषक गजमद—

गजमद—(*चिल्लाकर*) विदूषक नहीं, कविराज।

अश्वतुंग—(*जय को प्रणाम करके*) स्वर्ण बनाने की क्रिया, मैं आप से आगे कभी नहीं पूछूंगा। यहाँ सब सीख ली।

जय—(*वरद हस्त उठाने के उपरान्त*) आपका प्रायश्चित हो गया। अब अच्छे दिन आ रहे हैं। मुझको हर्ष है कि जीवन को धर्म के अनुसार व्यतीत करने के लिये आप बच गये। कष्टों की तपस्या ने आपको निखार दिया है।

(यात्रियों के पीछे से कुछ योधा आतुरता के साथ आगे आते हैं। इनका क्षौर हो चुका है और ये वस्त्र पहिने हुये हैं।)

योधा—जय पल्लव महाराजकुमार अश्वतुङ्ग की !

(आंख में आये हुये एक आंसू को पोंछता है)

अश्वतुंग—(*स्वर को नियंत्रित करके मुस्कराता हुआ*) मेरे पापों का दण्ड तुमको भी भुगतना पड़ा ! सोचता हूँ तुम लोगों को पाकर घोर कठिनता द्वारा प्राप्त अपनी हँसी को कहीं भुला न बैठूं। आओ तुमको गले लगा लूँ।

महानाविक—हम सब आते हैं, भले ही द्वीप-वासी लड़ने मरने को आ जायें। माझियो, यान से उतरने के लिये सीढ़ियां और पटिये डालो।

चन्द्रस्वामी—यह यान किसका है, महानाविक ?

महानाविक—आपका।

चन्द्रस्वामी—मुझको विश्वास था। श्रेष्ठी कन्दर्पकेतु का यान कहां है ?

महानाविक—आगे निकल गया है। इनको हम लोगों का सङ्ग अच्छा लगा, इसलिये हमलोगों के साथ यात्रा कर रहे हैं।

(मांझी सीढ़ियां और पटिये डालते हैं। यात्री नीचे उतर पड़ते हैं। अश्वतुङ्ग अपने साथियों का आलिंगन करता है। गौतमी कुतूहल के साथ उन तीनों वल्कल वसन धारियों को परखती है। महानाविक भी उतर आता है।)

महानाविक—पल्लवेन्द्र धर्म महाराजाधिराज वीरवर्म्मा का देहान्त हो गया है और अब उनके पुत्र स्कन्दवर्म्मा द्वितीय पल्लवेन्द्र हैं।

अश्वतुंग—कब देहान्त हुआ?

महानाविक—एक वर्ष से कुछ ऊपर हो गया। आप धान्यकटक चल सकते हैं।

अश्वतुङ्ग—*(कुछ रुखाई के साथ, बैठे स्वर में)* मैं धान्यकटक नहीं जाऊँगा महानाविक। इस चर्चा को छोड़कर आगे की सोचूँ। *(अपने साथियों से अधिक स्वाभाविक स्वर में)* तुम्हारे अन्य साथी कहाँ हैं?

एक योधा—निकटवर्ती उप द्वीपों में बिखरे हुये हैं।

महानाविक—उनको यान में लेकर ही आगे बढ़ेंगे।

अश्वतुंग—यान के अन्य यात्रियों का क्या हुआ?

महानाविक—भगवान की कृपा से बच गये। उनको एक यान मिल गया था। उसके द्वारा वे तभी धान्यकटक पहुँच गये थे। विवरण फिर कभी बतलाऊँगा।

गौतमी—*(कन्दर्पकेतु को थोड़ा सा अलग ले जाकर)* क्या यही भगेन्द्र महाराजकुमार अश्वतुङ्ग हैं?

कन्दर्पकेतु—हाँ बेटी।

गौतमी—इनसे पूछिये कैसे बचे? द्वीपवासियों ने इनको भक्षण से कैसे छोड़ दिया? द्वीपवासी क्या सचमुच मनुष्य-भक्षी हैं? वे कैसे होते हैं? क्या देखने को मिल सकते हैं?

कन्दर्पकेतु—पूछता हूं।

(कन्दर्पकेतु अश्वतुङ्ग के पास आता है)

कन्दर्पकेतु—मेरा नाम कन्दर्पकेतु है। धान्यकटक का व्यापारी हूँ। द्वीपों में व्यापार करता हूँ। वरुण द्वीप को जा रहा हूँ। यह मेरी कन्या है, नाम कुमारी गौतमी। आपके और द्वीप निवासियों के सम्बन्ध की कथायें जानने के लिये इसके मनमें बहुत जिज्ञासा है।

अश्वतुङ्ग—मैंने आप दोनों के दर्शन श्रीपर्वत के विहार में कुछ क्षण के लिये किये थे।

कन्दर्पकेतु—स्मरण हो आया।

गौतमी—पूछिये इनसे, विस्तार के साथ बतलावे इस द्वीप की बातों को।

अश्वतुंग—विस्तार के साथ बतलाऊँगा। अवकाश के समय। संक्षेप में कथा यह है कि यान से एक डोंगी में उतरा। बहुत समय तक डोंगी समुद्र के थपेड़े खाती रही फिर डूब गई। मैंने दूसरे दिन अपने को इस रेत पर पड़ा पाया, न जाने कैसे आया था। कुछ क्षण उपरान्त अचेत हो गया, जब चेत आया तो अपने को द्वीप वासियों के बीच में बलिदान के लिये बँधा पाया। वहीं महानाविक, और ये दोनों बँधे आ गये। महानाविक निकल भागे, एक नारी की कृपा से हम सब बच गये और अब भी बचे हुये हैं।

गौतमी—यहाँ खाने को क्या मिला?

अश्वतुङ्ग—फल, फूल, मूल। अन्न तो यहाँ किसी भी प्रकार का नहीं मिला।

गौतमी—यहाँ के द्वीपवासी क्या खाते हैं?

चन्द्रस्वामी—धीरे धीरे सब जान जाओगी; एक बात मैं पूछ लूँ। महानाविक, पोतवाली मेरी सम्पत्ति और सामग्री का क्या हुआ? राजकुमार की सामग्री का क्या हुआ?

महानाविक—धान्यकटक में सुरक्षित रक्खी है। मैं यहाँ से भागकर शान्त समुद्र को पा गया। धान्यकटक जाने वाला एक पोत मिला। और वहाँ बिना किसी विशेष कठिनाई के पहुँच गया।

चन्द्रस्वामी—धान्यकटक की ओर जाने वाला कोई पोत मिल गया तो पहले मैं वहीं जाऊँगा, फिर वारुण द्वीप को आऊँगा।

जय—अभी तो हम सब वारुण ही जा रहे हैं।

चन्द्रस्वामी—मैं कोई बाधा नहीं डालूँगा। भारत को जाने वाला पोत न मिला तो साथ ही वारुण चलूँगा।

जय—कुमार और (*गजमद से*) आप भी हमलोगों के साथ चलें।

गजमद—ठीक है, हमारा यहाँ रक्खा ही क्या है। महानाविक ने नागद्वीप का नाम नरक द्वीप उचित ही रक्खा था।

अश्वतुंग—हमारी तो यही मनोकामना है, परन्तु हमारे पास यात्रा-कर चुकाने के लिये केवल फल और मूल हैं, वे भी आपको बहुत नीरस और कुस्वाद लगेंगे।

कन्दर्पकेतु—राजकुमार, मैं दूँगा आप दोनों का यात्रा-कर। वारुण में पूँजी भी दूँगा जिससे आप उद्योग-धन्धा करके समृद्ध हों।

अश्वतुंग—धन्यवाद! मैं ब्याज समेत लौटा दूँगा।

कन्दर्पकेतु—नहीं यह नहीं होगा राजकुमार। वारुणद्वीप में स्थायी निवास के लिये मैं पुत्री सहित जारहा हूं। वृद्ध होरहा हूँ। इसके भविष्य की चिन्ता है। पहले इसकी इच्छा भिक्षुणी बनने की थी, आपको कदाचित् स्मरण होगा। न हो सकी, अब मैं इसका विवाह कर देना चाहता हूं। आपके साथ विवाह करने की अभिलाषा है।

(*अश्वतुंग के होठों का एक कोना सिकुड़ जाता है*)

गौतमी—छिष्ट! छिष्ट!! छिष्ट!!!

(*गौतमी अश्वतुंग के आकार-प्रकार और अपने वस्त्रालङ्कारों पर द्रुतदृष्टि फेरती हुई पीठ मोड़ लेती है। अश्वतुंग के होठों का सिकुड़ा हुआ कोना हँसी में विकसित होजाता है*)

कन्दर्पकेतु—यह लड़की अभी नासमझ है! नितान्त अबोध!! मातृहीन होने के कारण यह बहुत भोली रही है।

अश्वतुंग—उससे बढ़कर बुद्धिमती और कौन हो सकती है ? इसने मेरी गई हुई हँसी को लौटा दिया है ।

(गौतमी मुड़कर आश्चर्य की दृष्टि से अश्वतुङ्ग और कन्दर्पकेतु की ओर देखती है ।)

जय —गौतमी भगवान अविलोकितेश्वर की आराधना करेगी । इसको प्रबोध प्राप्त होगा ।

(कंदर्पकेतु सिर नीचा किये रह जाता है । गौतमी की दृष्टि में प्रश्न है । गजमद और चंद्रस्वामी द्वीप की दिशा में देखने लगते हैं)

महानाविक—आँधी के शान्त होते ही चल दीजिये हमारे साथ । आपकी कुछ सामग्री है कहीं द्वीप में ?

अश्वतुंग—केवल एक वाण, यदि उसकी गणना सामग्री में हो सकती हो, तो । है मेरे लिये वह बहुत महत्व का । भगवान का और उसी का सहारा रहा है ।

महानाविक—आप लोग यान में चलकर भोजन कर लीजिये । शुद्ध मीठा जल भी है वहां ।

चन्द्रस्वामी—भूखों मरते मरते तीन वर्ष से ऊपर होगये ।

गजमद—उपवास-चिकित्सा की सीमा का उल्लंघन हो गया, जैसे—*(माथा टटोलता है)*

अश्वतुंग—इनकी कविता का कङ्कालमात्र रह गया है अब ।

गजमद—कङ्काल नहीं ठूंठ, परन्तु मूल उसका सरस है, फिर हरिया उठेगी—मेरी कविता ।

महानाविक—तो चलिये यान में । एक वाण के संग्रह का प्रयास व्यर्थ है । यान में अपरिमित हैं ।

अश्वतुंग—चलिये ।

(एक चट्टान की ओर से धारा यकायक आजाती है । केश रूखे और बिखरे हुये, बड़ी-बड़ी आँखें फैली हुई, सतेज । कन्धे पर

धनुष और बांस के नुकीले बाणों का मूठा। मूठे में लोहे का भी बाण है)

धारा—कहाँ चलिये? इन व्यापारियों के साथ कहाँ जाते हैं महाराजकुमार?

(उसके अचानक आजाने, जङ्गली वेश, और प्रचण्ड आकृति को देखकर और तीव्रस्वर में अपनी भाषा को सुनकर सब चकित होजाते हैं। गौतमी भयभीत है, कंदर्पकेतु थरथराहट में, गजमद और चन्द्रस्वामी क्षोभ में। जय एक डग पीछे हटकर स्थिर और शान्त होजाता है। मांझी और योधा यान में अविलम्ब पहुंच जाने के लिये सीढ़ियों और पटियों को लक्ष करते हैं। यह सब देखकर अश्वतुंग मुस्करा जाता है)

महानाविक—(*बहुत विचलित*) तस्करी! डायन!! राक्षसी!!!

अश्वतुङ्ग—यह इस द्वीप की महारानी धारा देवी हैं, महानाविक अवन्तिसेन!

महानाविक—अ अ अ—और मनुष्य-भक्षिणी!

अश्वतुंग—नहीं हैं।

धारा—कदापि नहीं। कौन है रे तू?

(जय की मुद्रा शान्त है। वह आगे आता है)

जय—शान्त! महानाविक शान्त!! क्या तुम इसको जानते हो?

महानाविक—उस रात जब मुझको और इन सबों को बाँध लिया गया, और, द्वीपवासी हम लोगों को भूनकर खा जाना चाहते थे, तब उस होने वाले नरमेध का यही संचालन कर रही थी। कैसे भूल सकताहूँ?

चन्द्रस्वामी—परन्तु धारादेवी स्वयं मनुष्यभक्षिणी नहीं हैं।

जय—देवी, तुम द्वीप की भाषा जानती हो?

धारा—जानती हूँ, फिर? आप कौन होते हैं पूछने वाले?

जय—आप इस द्वीप की नहीं हैं जो आपकी आकृति और भाषा से प्रकट हो रहा है।

गजमद—और वल्कलवसन तो हम तीनों ही धारण किये हुये हैं. फिर भी पूरे आर्य और पक्की भारती सन्तति हैं। जैसे उर्वरा भूमि को वृक्ष, सूर्य को मेघ, पराक्रम को अपवाद, अग्नि को आच्छादन, आत्मा को रूप छिपा नहीं सकता, उसी प्रकार मगध की धारादेवी को पल्लव, बेलें, वप्रकेश नहीं छिपा सकते। और जैसे—

जय—(*मुस्कराकर*) सुन लिया कविराज। देवी, आप मगध की हैं! फिर यहाँ, इस वेश में!!

गजमद—मैं बतलाता हूँ।

अश्वतुंग—खेद है कि हम सब की गाँठ में उतना समय नहीं जितनी आप में कविता की स्फूर्ति। इनके पिता जिष्णु को मगधराज ने किसी अपराधवश उनके कुछ सहचरों सहित देश से निर्वासित कर दिया। जिष्णु के साथ इस द्वीप में धारा देवी बाल्यावस्था में आईं। जिष्णु के सहचर समाप्त हो गये, केवल ये दोनों इस द्वीप में बचे। संक्षेप में कथा इतनी ही है। आगे जो कुछ हुआ वह परिस्थिति-वश हुआ। इनके पिता इस द्वीप के स्वामी हो गये, अब द्वीप की रानी यह हैं।

धारा—(*कुछ धीमे स्वर में*) और पल्लव महाराजकुमार—

अश्वतुंग—ठहरिये महाराजकुमार नहीं, पल्लवाच्छादित ... कुछ अश्वतुङ्ग (*आधे क्षण गौतमी की ओर देखकर जय से*) महानाविक को इतने परिचय से सन्तुष्ट हो जाना चाहिये।

(*महानाविक कुछ सोचता है*)

जय—देवी, तुम मानव का बहुत कल्याण कर सकती हो। बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में आ जाओ।

धारा—रहती तो हूं भगवान शङ्कर की शरण में।

(*कुछ द्वीपवासी आ जाते हैं। उनके साथ तुम्बी भी है*)

महानाविक—ये तो हैं मनुष्य-भक्षी!

जय—यह उनके पूर्वजन्म और वातावरण का विकार है। देवी धारा, आप इनको नर-बलि से विरत कीजिये।

धारा—कर दिया है। तीन वर्ष मे एक भी नर-हानि नहीं हुई।

गौतमी—हे भगवान, ये ह मनुष्य-भक्ता!! कितने कुरूप-भयावने हैं!!

जय—देवी धारा, भगवान आपका कल्याण करें। आपके द्वारा इन द्वीप वासियोंको सत्य-धर्मका ज्योति मिलनी चाहिये। मै वारुणमे लौट कर भिक्षुओं सहित आपके द्वीपमें आऊँगा, सद्धर्म के विस्तार का यत्न करूँगा।

धारा—तो क्या आप महाराजकुमार को ले जायँगे? ऐसा तो नहीं करने दूंगी।

अश्वतुंग—इन्होंने हम तीन गीछों को पाल रक्खा है सो एक चन्द्रस्वामी तो निश्चय ही नाथ को तोड़कर चला। रह गये हम दो—

धारा—सो मैं इनको नहीं जाने दूँगा, अन्यथा द्वीप की व्यवस्था अस्तव्यस्त हो जायगी। सब नष्ट हो जायगा। और मै—

(जय और भी मुस्कराता है)

गजमद—आप भी वारुण द्वीप को चलिये।

अश्वतुंग—यात्रा-कर के उपलक्ष में इस द्वीप के नाले, नदियाँ कदली-कुञ्ज, इत्यादि श्रेष्ठी के हाथ भोगबन्धक कर डालिये।

चन्द्रस्वामी—मै अपने पोत का यात्रा-कर लूँगा आप से और इन देवीजी से! छि! छि!! मुझको इतना कृतघ्न तो न समझिये!

अश्वतुंग—मैंने व्यापार की बात कही, और फिर इस द्वीप भर में जितने कदली-कुञ्ज और फल-वृक्ष हैं उतने तो वारुण के एक छोटे से खण्ड और श्रेष्ठी के उद्यान मे ही निकल आवेंगे।

चन्द्रस्वामी—देवी जी, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ।

(धारा गौतमी के वस्त्रालंकारों का सूक्ष्म निरीक्षण करती है)

धारा—क्या इसी प्रकार के वस्त्रालङ्कार पहिने जाते हैं बाहर देशों में?

अश्वतुंग—मगध, आन्ध्र, इत्यादि सभी भारती प्रदेशों में मैं भी आपसे प्रार्थना करता हूं, चलिये।

धारा—(*अपने वल्कल वसनों को तुलनात्मक दृष्टि से देखती हुई*) इन वस्त्रालङ्कारों में बहुत बोझ होता होगा। (*द्वीपवासियों को देखती हुई*) इनको किसके आश्रम में छोड़ जाऊँ? और वह गुफा, वे वन-पर्वत, उपत्यकायें, तुम्भी! मैं अकेली!!

गजमद—पल्लव राज्य में बड़े बड़े सुहावने पर्वत, कल्लोल करती हुई नदियां, हँसते हुये दूर्वादल, दमकते हुये वृक्ष, सुगन्धिमयी मंजरियों से लदे हुये आम्रकुन्ज, गाती हुई कोकिलायें, मंजुल-मंगल नरनारी और—

अश्वतुंग—और (*दाढ़ीपर हाथ फेरकर*) यह जामवन्त (*गजमद की ओर संकेत करके*) दूसरा रीछ, यह तो रहेंगे आपकी सेवा में !

(*धारा यकायक हंसकर गम्भीर हो जाती है। जय मुस्कराता रहता है। गौतमी के मुख पर क्षोभ है। महानाविक प्रसन्न है। कन्दर्पकेतु विचारमग्न। चंद्रस्वामी पोत पर चढ़ जाता है*)

जय—चलिये देवीजी, चलिये।

चन्द्रस्वामी—(*प्राङ्गण पर से चिल्लाता हुआ*) देवीजी, वस्त्रालङ्कार सब यहाँ पोत में आपको भेंट करूंगा !

जय—आपको भाषा का ज्ञान तो है, शास्त्र का ज्ञान भी वारुण में बहुत समृद्ध होजायगा।

धारा—क्या वारुण में वस्त्र सदा मिलते रहते हैं ? वस्त्रों के अभाव में क्या अच्छे पल्लव, छाल इत्यादि वारुण में सुलभ होजाते हैं !

(*जय हँसता है। धारा भोलेपन के साथ कुछ संकोच में होगई। और उन सबके चेहरों पर द्रुतगति से दृष्टि फेरती है*)

जय—वस्त्रों की चिन्ता न करें देवी। गौतमी से आपको वस्त्र मिलेंगे वे ही आपको उन वस्त्रों का पहिनना भी सिखलावेंगी।

धारा—महाराजकुमार यदि द्वीप को छोड़कर इस यान से जाना चाहते हैं तो चलूँगी। पर मैं यान पर कभी नहीं बैठी। जब पिताजी के साथ आई थी, तब का स्मरण नहीं।

अश्वतुंग—मैं भी पहली ही बार बैठा था जब इस द्वीप में आया। समुद्र-यात्रा में बड़ा आनन्द आता है, चलिये।

धारा—यहां के राज्य का भार किसको सौंपूं ?

अश्वतुंग—तूम्बी को और उस वाण को। आपके साथी भी मान जायेंगे। और फिर आपको हमको लौटकर भी तो एक दिन यहां आना है। अस्थायी व्यवस्था कर दीजिये।

चन्द्रस्वामी—(*प्रांगण पर से चिल्लाता हुआ*) आप दोनों क्षौर कर लीजिये ! और वस्त्र भी पहिन लीजिये ! जैसा आपके अन्य साथी पहले ही कर चुके हैं ।

अश्वतुङ्ग—हाँ, रीछ योनि से मनुष्य योनि में आने के लिये क्षौर, वस्त्राच्छादन इत्यादि का पुल बनाना ही पड़ेगा । क्या, अनुमति है धारा देवी ? (*वह हँसकर सङ्कोच में मुँह बिराती है*) तो आप तूम्बी को और द्वीपवासियों को समझा-बुझा दीजिये । फिर पोत में आकर वसन धारण कर लीजिये, तब तक हम लोग पोत में जाकर वस्त्र पहिनलें !

धारा—ऐसा न हो कि आप मुझको यहीं छोड़कर चले जायँ !

अश्वतुंग—तब यह वज्र महानाविक मुझको पोत में से उठाकर समुद्र में फेंक देगा और मैं तैरता-डूबता फिर इसी रेत पर आ जाऊँगा ।

(*धारा मुस्कराती हुई जाती है और द्वीप निवासियों से कुछ कहती है । अश्वतुङ्ग और गजमद पोत पर चढ़ जाते हैं*)

गौतमी—(*कन्दर्पकेतु से*) कितनी भयानक है यह स्त्री ! पोत में किसी को मार कर खा न जाय !!

जय—(*मुस्कराता हुआ*) चिन्ता न करो गौतमी, सबके उपलक्ष्य मे उसको मैं दे दूँगा अपना शरीर ।

गौतमी—तो इसको सङ्ग में लिये ही क्यों चलते हो ?

(*महानाविक हँसता है । अश्वतुङ्ग के साथी मुस्कराते हैं*)

महानाविक—महायान की कुशल-क्षेम का दायित्व मेरे ऊपर है ।

जय—तुमसे यह वनकन्या बहुत सीखेगा । इसको वस्त्र पहिनने की शिक्षा देना, धर्म और नीति सिखलाना । किसी दिन धारा ने उपसम्पदा लेली तो संघाराम में रहेगी । तुम उसको वासनाओं पर विजय प्राप्त करने में सहायता देना। मेघजल से धोये हुये नक्षत्र के समान वह उज्वल हो जायगी और फिर मैं भगवान के अमृतकणों का प्रसाद उसको दूँगा । पतित को उठाना ही तो सामर्थ्य का उद्देश्य है, नहीं तो पशु के बल और मानव की शक्ति में अन्तर ही क्या रहा ?

गौतमी—(*विनीत स्वर में*) मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगी । संयम के कण कण का संग्रह करूँगी ।

(धारा और द्वीपवासी कुछ दूरी पर हैं। द्वीपवासी, एक एक करके, उसका हाथ फूकते हैं)

गौतमी—(आश्चर्य के साथ) यह क्या हो रहा है ?

महानाविक—द्वीप की प्रथा है—फूकों द्वारा भविष्य में सांप के दंश और विष का अग्रिम निवारण दे रहे हैं। इन बर्बरों के अनेक विश्वास विचित्र हैं ! (द्वीपवासी धारा का हाथ फूकते रहते हैं)

यवनिका।

चौथा अंक

पहला दृश्य

[स्थान—महायान के ऊपर का एक भीतरी कक्ष। समुद्र शांत है। यान उस पर रिपटता हुआ सा चला जारहा है। इस कक्ष के भीतर बैठने वालों को समुद्र खिड़कियों से दिखलाई पड़ता है। कक्ष में अश्वतुङ्ग, धारा, गौतमी और कन्दर्पकेतु। अश्वतुङ्ग का क्षौर हो गया है। केश सुव्यवस्थित हैं, वस्त्र पहिने हुये हैं। धारा का केशकलाप तेल डालने के कारण चिकना हो गया है। रंग बिरंगी कंचुकी और साड़ी पहिने हुये है। थोड़े से स्वर्ण आभूषण भी, जिनको चन्द्रस्वामी ने प्राप्त करके भेंट किया है। गौतमी के वस्त्र और अलङ्कार अधिक तड़क-भड़कदार हैं। धारा के नेत्र कुतूहल, जिज्ञासा और आल्हाद में छलछला से रहे हैं। गौतमी की आँखों में सूक्ष्मावलोकन, और किसी को पराभूत करने की वांछा में परस्पर द्वंद्व सा है। अश्वतुङ्ग प्रसन्न है, परंतु आँख कभी रीती सी हो जाती है। कन्दर्पकेतु व्यग्र है, परंतु व्यग्रता को छिपाने के लिये समुद्र की लहरों को गिनसा रहा है। उन सबके पास एक एक पंखा रक्खा हुआ है। पवन साधारण गति से चल रहा है, इसलिये पंखे डुलाने की किसी को आवश्यकता नहीं पड़ रही है। अनावश्यक होने पर भी केवल गौतमी कभी कभी डुला लेती है।]

गौतमी—(*धारा से*) आपको अब यहाँ का भोजन और रहन-सहन तो अच्छा लगने लगा है ?

धारा—मुझको यहा का सभी कुछ रुचने लगा है. केवल चलने-फिरने और दूर पर्यटन करने का साधन न होने के कारण कभी कभी मन उकताने लगता है। महानाविक से कहा कि दो-एक घण्टे के लिये पतवार मुझे भी चला लेने दिया करो तो उसने निषेध कर दिया।

अश्वतुंग—महानाविक की दूरदर्शिता में आपके व्यायाम-सुख की उपलब्धि को उतना स्थान न मिला जितना इस यान की रक्षा को।

धारा—(*हँसती है। उसके मोती जैसे दांत उस सरल सहज हास में दमक जाते हैं*) क्या मैं यान को डुबो देती ?

गौतमी—आपको किसी ऐसे प्रयत्न की अटक ही नहीं था। पतवार का जैसे ही अधकचरा सञ्चालन होता यान विचलित होता; उस क्षण माझी करते होते द्वीपवासियों के जीवन के सम्बन्ध में आपसे प्रश्न, सो व भूल जाते अपना काम। तब हमलोग चिल्ला पड़ते त्राहि ! त्राहि !!

(*गौतमी की मुख-विकृति को देखकर और यान के काल्पनिक सङ्कट की बात को सोचकर धारा हँसती है। वह गौतमी की अपेक्षा सुन्दर है। गौतमी को उस हास में धारा के सौन्दर्य विकास को बढ़ते हुये देखकर अच्छा नहीं लगता।*)

अश्वतुङ्ग—नृत्य द्वारा शरीर को, पतवार चलाने की अपेक्षा, अधिक व्यायाम मिलता है। उसको सीखिये। गौतमी जानती होंगी। भारत का भरतनाट्य बहुत सुन्दर होता है।

गौतमी—जानती हूं, परन्तु बड़ा श्रम-साध्य है।

अश्वतुंग—श्रम तो द्वीपवासियों के नृत्य में भी बहुत पड़ता है जो कभी कभी घण्टों तक अथक चलता रहता है।

गौतमी—उसी को क्यों नहीं करतीं आप जो आपका जाना-समझा है ? आप द्वीप में उन बर्बरों के साथ तो नाचा ही करती होंगी। (*धारा के मुख की कुछ रेखायें सिमटती हैं*) वे खर्वाकार बर्बर आपकी लम्बी काया के साथ में ऐसे लगते होंगे जैसे किसी बड़ी पोखरी के हिलते हुये जल में मेंढक उछल रहे हों।

अश्वतुंग—या जैसे चन्द्रिका के साथ बादल के छोटे छोटे टुकड़े खेल रहे हों। नागद्वीप के खर्वाकार बर्बर हमारे सभ्य देश के अनेक शिक्षितों से कई बातों में अच्छे हैं। जैसे भीतर–तैसे बाहर, बहुत भोलेभाले।

कन्दर्पकेतु—वारुण द्वीप में भारतियों की अनेक छोटी बड़ी बस्तियां हैं। उनके आसपास वारुण के सभ्य और असभ्य प्रचुर संख्या में रहते हैं। अपने देश के नृत्य और खेलों के साथ साथ सभ्य और असभ्य वारुण–वासियों के भी खेलकूद होते रहते हैं। दोनों में आनन्द की सामग्री है। दोनों में समन्वय हो रहा है।

(धारा का त्वरित आया हुआ क्षोभ शीघ्र चला जाता है)

धारा—वारुण पहुँचने में कितने दिन अभी और लगेंगे?

कन्दर्पकेतु—जहाँ हम लोग इस समय जा रहे हैं यहाँ से पूर्व में कसेरु प्रायःद्वीप, पश्चिम में सौम्य और दक्षिण में सिंहपूर है। सिंहपूर दो दिन में पहुँचेंगे। वहाँ से अपना अभीष्ट वारुण तीन दिन का मार्ग है। यदि पवन ने कोप न किया तो सिंहपूर में मीठे जल और क्रय–विक्रय का कुछ काम करके पाँच दिन के भीतर भीतर वारुण पहुँच जायँगे।

धारा—इन द्वीपों के निवासी किन वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते हैं?

कन्दर्पकेतु—हमसे वे लोग बना हुआ लोहा, कपड़ा, गेहूँ, चन्दन, खिलौने इत्यादि लेते हैं; वे हमें ऊन, शर्करा, पशु, स्वर्ण, मोती, कपूर, पशुचर्म, पारद, बेत, मिर्च और कभी मणि–माणिक भी, देते हैं।

धारा—रङ्ग-रूप, सरलता और शूरता में क्या वैसे ही होंगे जैसे नागद्वीप के निवासी हैं?

गौतमी—और क्या, पिताजी, वे नृत्य भी इसी प्रकार का करते हैं जैसा इनके नाग–द्वीपवासी? और कोई वैसे ही रोते चिल्लाते हैं जैसे ये लोग जब मित्रों या सम्बन्धियों से कुछ समय उपरान्त मिलते हैं, और क्या वैसे ही एक दूसरे का हाथ फूकते हैं जब एक दूसरे से बिदा होते हैं?

धारा—*(हँसकर)* मेरी बिदा के समय आपने देखा होगा कि वे रोये भी थे। एक दूसरे के हाथ फूकते हैं इस अभिप्राय से सर्पदंश से बचे रहें।

गौतमी—और मिलने के समय इसलिये क्रन्दन करते होंगे कि आगतों, अतिथियों को खिलायँगे कहां से।

(*धारा गम्भीर होकर दूसरी दिशा में देखने लगती है ।*)

कन्दर्पकेतु—देश देशान्तरों की रीतियां भिन्न भिन्न होती ही हैं ।

अश्वतुंग—मलय के जलचोर निस्सहाय द्वीप-निवासियों को पकड़ पकड़ कर ले जाते थे और उनको दास बना लेते थे इसलिये द्वीप-वासियों में प्रतिहिंसा जागी और वे क्रूर होते चले गये ।

धारा—वारुण में पशुपक्षी किस प्रकार के हैं ? सुना है वहाँ के वनों में सिंह और कुन्जर भी हैं ?

अश्वतुंग—कुक्कुर-कुञ्ज और नानाप्रकार की बंदरियां-बन्दर भी हैं ।

(*धारा किसी व्यङ्ग और परिहास का मिश्रण पाकर तृप्त होती है और क्षणखण्ड में मुस्कान के साथ अश्वतुङ्ग की ओर देखकर गौतमी पर दृष्टि गड़ाती है*)

गौतमी—(*अपने अलंकारों पर सहसा आंख फेरती हुई*) वारुण के आदि वासी वैसे ही आभूषण पहिनते होंगे जैसे धारा देवी के द्वीप-निवासी हड्डी और बांस की पुंगरियों के पहिने थे ? क्यों पिताजी ? (*गौतमी आँख गड़ाकर धारा के अलङ्कारों का पर्यवेक्षण करती है ।*)

कन्दर्पकेतु—सभ्यता और संस्कृति के केन्द्रों से दूर रहने वाले आदि-वासी तो ऐसे ही पहिनते हैं, परन्तु नगरों और पुरों के निकट रहने वाले हड्डी और पुगरियों के आभूषण नहीं पहिनते ।

गौतमी—सिंह और कुन्जरों के अतिरिक्त चूहे और कछुए भी हैं वारुण में या नहीं ? क्योंकि इनके बिना भोजन में आनन्द न तो नाग-द्वीप वासियों को आ सकता है और न वारुण के आदिवासियों को आता होगा ?

(*कुटिल दृष्टि से धारा की ओर देखती है । कन्दर्पकेतु खिन्न, धारा क्षुब्ध. और अश्वतुङ्ग विचार-मग्न खड़ा हो जाता है ।*)

अश्वतुंग—मैं कुछ क्षण के लिये समुद्र से दो दो बातें कर आऊँ ?

(*धारा का क्षोभ जिज्ञासा से ढक जाता है और वह कुतूहल की दृष्टि से अश्वतुङ्ग की ओर देखती है ।*)

कन्दर्पकेतु—(*प्रसङ्ग को बदला हुआ देखकर कुछ प्रसन्नता के साथ*) आप कभी कभी अटपटी बातें करने लगते हैं !

अश्वतुङ्ग—लम्बी दाढ़ी को विदा देने के उपरान्त मैं हनुमान जी की सेना में मिलने जा रहा हूं। जामवन्त से कविराज ! अब समुद्र को दोचार गालियां देकर थोड़ा सा उत्साह मग्न कर दूँ, हो सका तो उसे कुछ नोचूँ खरोचूँगा भी। कुछ तो क्षुब्ध होगा ही, फिर देखना है कि समुद्र हमारे इस कक्ष रुद्ध जीवन को कौनसी प्रगति देता है। *(धारा तमतमा जाती है)*

कन्दर्पकेतु—यह दूसरी हुई ! मैं कुछ नहीं समझा।

अश्वतुंग—*(कक्ष के द्वार से समुद्र को देखता हुआ)* बदली हो आई है। थोड़ा सा बाहर घूम कर आता हूं। *(जाता है)*

धारा—*(सहसा उठ कर)* आप उसी दिन से मेरे ऊपर कोई न कोई कटाक्ष किया करती हैं। मैं चूहे और कउए खाती हूँ ! मैं अस्थियों के अलङ्कार पहिनती थी !! बहुत सह लिया। खड़ी हो जाओ, मैं तुम्हारी इस साड़ी की धज्जियां कर दूँगी और तुम्हारे गले को इस प्रकार दबोच डालूँगी। *(झपटकर एक हाथ के झटके से गौतमी की साड़ी फाड़ डालती है और गले को रूँधने के लिये दूसरा हाथ बढ़ाती है। कन्दर्पकेतु 'अरे यह क्या ! अरे यह क्या !!' चिल्लाता हुआ बीच बिचाव करता है। सुनकर अश्वतुङ्ग आजाता है। धारा क्रोध और श्रम के मारे साँसें भरती हुई अलग खड़ी हो जाती है।)*

कन्दर्पकेतु—दोनों ऐसी शिक्षित होकर भी यह क्या कर बैठीं !

गौतमी—*(फटी हुई साड़ी को देखती हुई कम्पित स्वर में)* यह शिक्षित है ! निपट बर्बर !! राक्षसी !!!

(धारा दाँत पीसती है और मुट्ठियां कसती है)

अश्वतुंग—*(धारा से)* आप देवी जी, मुट्ठियों और होठों को शिथिल कर लीजिये। और आप देवी जी *(गौतमी से)* स्वर को निष्कम्प और स्वरित बना लीजिये। नृत्य और गान में जो आनन्द सुलभ है, वह युद्ध में कहां ? मान लीजिये समुद्र क्षुब्ध हो उठे और कभी इस दिशा और कभी उस दिशा से बात करने लगे तो फिर हम न तो नृत्यगान कर सकेंगे और न युद्ध ! जैसे दो अग्नि-शिखायें दो जल-धारायें, दो काष्ठ-पिण्ड, दो लोहखण्ड, दो जामवन्त और दो कपि परस्पर मिल सकते हैं, वैसे क्या दो देवियां नहीं मिल सकतीं ?

(गौतमी की आँखों में आँसू आजाते हैं। धारा आँसुओं और फटी साड़ी को देखकर द्रवित हो जाती है। उसकी मुट्ठियाँ खुल जाती हैं और होटों का कसाव ढीला हो जाता है)

धारा—मुझसे भूल हुई। अपने दुर्व्यवहारकी आपसे क्षमा माँगती हूं।

गौतमी—(*रुँधे हुये कण्ठ से*) एक क्षण में अपराध, दूसरे में क्षमा याचना! मैं भी कभी देखूँगी।

अश्वतंग—आओ धारा देवी। बाहर चलकर देखो, नभ में मेघखण्ड टक्करें लेते हुये भी गर्जन तर्जन नहीं कर रहे हैं और न उल्कापात।

(वह जाता है और उसके साथ सिर उठाये हुये धारा)

कन्दर्पकेतु—उसने क्षमा माँगली, शान्त हो जाओ। खर्वाकार बर्बरों में रही है, इसलिये दुश्शील है। तुम भी बाहर घूम आओ। राज-कुमार को बुलाकर मैं तुम्हारे स्वयम्वर की चर्चा करना चाहता हूं। तुमको अब तो कोई आक्षेप नहीं है?

गौतमी—(*सिर नवाकर*) मैं बाहर नहीं जाऊँगी। (*सलज्ज*) उस दिन, द्वीप में, आक्षेप था, अब नहीं है।

कन्दर्पकेतु—तुम बहुत विवेक वाली हो। मैं अश्वतुंगको बुलाये लाता हूं।

(गौतमी चुप रहती है। कन्दर्पकेतु बाहर जाता है। गौतमी साड़ी की फटन को पर्त देकर छिपाने का प्रयत्न करती है। कन्दर्पकेतु अश्वतुङ्ग के साथ आता है)

कन्दर्पकेतु—अब गौतमी स्वयंम्वर के लिये सहमत है। उसको आक्षेप नहीं है। (*गौतमी पीठ फेर लेती है*) मैं उधर धारा को शान्त कर आऊं, तब तक आप यहीं ठहरना महाराजकुमार।

(कन्दर्पकेतु उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही चला जाता है। गौतमी अश्वतुङ्ग के सम्मुख हो जाती है। वह अपने मुख पर आल्हाद को लाने का प्रयास करती है और साड़ी की फटन को और भी अधिक छिपाने का; परन्तु वह सर्वथा नहीं छिपती)

अश्वतुंग—देखिये देवी, मैं उस दिन रीछ था, अब कपियों में मिल जाने की ओर यात्रा कर रहा हूँ। उस समय भी हँसता था और अब भी हँसता हूँ। आप भी अपने ऊपर हँसना सीखिये।

गौतमी—उस डायन ने मुझको मारकर खा जाने में कुछ भी शेष नहीं रक्खा था। आप आ गये नहीं तो न जानें क्या कर डालती।

अश्वतुंग—देवी, मैंने डायनों के सम्बन्ध में जो कुछ सुना है उससे इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि उनके आँखें तो होती ही हैं, कान भी होते हैं इसलिये थोड़ा धीमे स्वर में बोलिये और कोई ऐसी चर्चा करिये जिससे विगत,की विस्मृति हो जाय।

गौतमी—(हलकर) आप वारुण पड़ना ही चाह जा रहे हैं, पर सुना तो होगा ही कि वहाँ बड़ी संख्या में भारती सन्तति हैं। ब्राह्मण, क्षत्रि, वैश्य सभी हैं। वर्ण व्यवस्था वहाँ कैसी है ?

अश्वतङ्ग—भारतकी अपेक्षा पर्याप्त मात्रा में कम कठोर। और देवी, सुना है कि वहाँ चूहों,कउओ सिहों और कपियों में ता वर्णव्यवस्था है ही नहीं।

(*गौतमी हँसती है। सिर झुकाती है। झुकाते ही साड़ी की फटन पर दृष्टि जाती है और हँसी बन्द हो जाती है।*)

गौतमी—(*सिर उठाकर*) उस दिन जब पहले पहले आपको देखा था, कुछ अनर्गल बक गई थी। आपको बुरा लग गया होगा ?

अश्वतङ्ग—मैं इतना बुरा रह चुका हूँ, इतनी बुराइयाँ झेल चुका हूँ कि अब किसी की भी कोई बात बुरी नहीं लगती।

गौतमी—कोई बात अच्छी लगती है ?

अश्वतुङ्ग—हां हां एक बात सबसे अच्छी : जब कोई अपने ही ऊपर हँसता है। दूसरे के फिसल पड़ने अथवा गिर पड़ने पर तो बहुत लोग हँस डालते हैं, परन्तु स्वयं पर हँसने वाले कदाचित थोड़े ही हों। कह नहीं सकता अनुभव करता जाता हूँ। मेरा अत्यन्त सुन्दर जीवन केवल तीन वर्ष का ही तो है। मुझको अपने ऊपर हँसना सबसे अच्छा लगता है।

गौतमी—आप उस बर्बर जीवन-काल को सुन्दर कहते हैं ! आपकी बातें वास्तव में गूढ़ होती हैं !!

अश्वतुंग—बर्बर तो भीतर भीतर एक न एक अंश में हम सभी हैं। अरे ! मैं उपदेश देने पर आगया !! यह उन शात प्रकृति जय स्थविर की संगति का प्रभाव है। वारुण पहुँचते पहुँचते न जाने मेरे स्वभाव पर और क्या क्या बीतनेवाली है। किसी दिन वारुण के किसी बौद्ध विहार का भिक्षु न बन जाऊँ।

(गौतमी स्वम्बर की बात को नहीं कह पाती, उसका उत्साह शिथिल पड़ता जाता है. परन्तु वह एक प्रयत्न और करना चाहती है)

गौतमी—सुना है वारुण में ब्राह्मण धर्म का ही विस्तार है। बौद्ध तो बहुत ही थोड़े हैं और विहार तो एक भी न होगा।

अश्वतुङ्ग—इसीलिये तो यह स्थविर वारुण जारहे हैं। यह संघारामों की संख्या को अपरिमित किये बिना शान्त होने वाले नहीं हैं। अवसर मिला नहीं कि बुद्ध, धर्म और संघ के विषय पर बोले। इस समय नीचे के कक्ष में गजमद इत्यादि को उपदेश दे रहे हैं, सुनना हो तो चलिये।

(धारा आती है। उसकी आँख में शङ्का का कोई लक्षण नहीं है, सिधाई और दृढ़ता है।)

धारा—चलिये महाराजकुमार, आपको कुछ जलपान करा दूँ।

अश्वतंग—ठीक भी है। बातों से पेट नहीं भरता। आदेश का पालन करूंगा। नागद्वीप में आपका मुक्तबन्दी था, यहाँ कारागस्त स्वतन्त्र हूं। चलिये। *(जाता है)*

पीछे धारा जाती है। मुड़कर चिनौती भरी आँखों गौतमी की ओर देखती है। गौतमी भी क्षुब्ध दृष्टि द्वारा प्रत्युत्तर देती है। धारा के चले जाने पर कन्दर्पकेतु आता है।)

कन्दर्पकेतु—महाराजकुमार से कुछ बात हुई ?

गौतमी—नहीं।

कन्दर्पकेतु—मैं बात करूंगा।

गौतमी—नहीं। मैंने मठ में चले जाने का पक्का निश्चय कर लिया है। जहां सबसे अधिक शान्ति मिलेगी।

दूसरा दृश्य

[स्थान–वारुणद्वीप के पश्चिमीय भाग का एक पोतपत्तन। पोतपत्तन के पीछे स्थल की दिशाओं में सघन वन वाली पर्वतावलियाँ, जो समुद्र तट के निकट नीची हैं और दूरी में ऊँची होती चली गई हैं। दूरी में ऊँचे पर्वतों की चोटियां धूमिल, धुएँ से प्रच्छन्न सी दिखती हैं जैसे मोर्चा खाये हुये ताम्र की हों। घाट के निकट की नीची

पहाड़ियाँ, उनकी उपत्यकायें और घाटियां, ऊँचे ऊँचे हरे वृक्षों से भरी हुई सी हैं। वृक्षों में ताड़ और नारियल के पेड़ों की बहुलता है। समुद्र के किनारे पर सपाट समतल है, फिर उसका ढाल द्वीप की ओर क्रमशः ऊँचा होता चला गया है। घाट पर बड़े पोत नहीं आ सकते हैं। समुद्र यहां प्रायः शान्त रहता है। यह स्थान एक बड़ी खाड़ी के आकार का है। बड़े पोत दूर लङ्गर डाले खड़े हैं छोटी नावों से सामान और यात्री उतर चुके हैं। यात्री अपने सामान और व्यापार-वस्तुओं को द्वीप के भीतर पहुँचाने के प्रयत्न में व्यस्त हैं। कुछ छोटे बड़े ढेरों के पास, जिनको श्रमिक ढोने में लगे हुये हैं, चन्द्रस्वामी, कन्दर्पकेतु, गौतमी, अश्वतुङ्ग, धारा और गजमद व्यस्त हैं। घाट पर भारती और वारुण निवासी परिचितों जैसे मिलकर काम कर रहे हैं। चहलपहल मची हुईहै।]

गजमद—(अपनी छोटी २ पोटलियों को एक ठौर पर इकट्ठा करते २ यकायक रुक कर द्वीप की ओर देखते हुये) इधर समतल समुद्र, उधर सम-विषम पर्वत श्रेणियां, कहीं हरी दूब कहीं गगनचुम्बी वृक्ष, ऊपर नील-नभ और नीचे कपोतग्रीवा भूमि ! कैसा सुन्दर देश है वारुण !

अश्वतुंग—सौन्दर्य का चिन्तन कम करिये और पोटलियों की रक्षा पर दृष्टि अधिक दीजिये।

गजमद—क्यों ? इतने तो खड़े हैं यहां ! क्या तस्करपन यहां भी है ?

चन्द्रस्वामी—वह तो इन्द्रपुरी में भी है। अभी अभी सुना है कि यहां के हमारे कुछ गणतन्त्रों में लड़ाई ठन गई है। वारुणवासी कुछ इस पक्ष में कुछ उस पक्ष में समाकर युद्ध में भाग ले रहे हैं। वारुणियों के स्वतन्त्र राज्य भी परस्पर लड़ पड़े हैं। चोरी-लुटेरी बढ़ गई है। जनपद अरक्षित हैं। क्या किया जाय उसी पर बात कर रहे हैं।

अश्वतुङ्ग—(गजमद से) तुम्हारे कण्ठ में ही नहीं, कानों में भी कविता का वास है। क्या कुछ भी नहीं सुन रहे थे ?

गजमद—अनर्गल प्रलाप समझकर ध्यान नहीं दिया। तो अब इन पोटलियों को कहां ले जाना पड़ेगा ? क्या किसी दूसरे द्वीप में चल पड़ने की सोच रहे हो ? परन्तु बहुत से लोग तो इसी द्वीप में अपने

सामान के साथ जारहे हैं ! क्या चोर मेरी ही इन अल्पमूल्य वाली पोटलियों को अपना लक्ष्य बनावेंगे ?

धारा—समझ की बात कह रहे हैं।

अश्वतुंग—चोर पहले से जान लेते हैं न, कि अमुक पोटली में रत्न हैं और अमुक में केवल कौड़ियाँ। करे जाओ आकाश से बातें। तो श्रेष्ठी, अब कहाँ चलने का सङ्कल्प किया है ?

कन्दर्पकेतु—मेरा स्थान सुरक्षित है। आतिथ्य स्वीकार कीजिये।

(धारा अश्वतुङ्ग को आंखों से वर्जित करती है।

चन्द्रस्वामी—राजकुमार के हाथ में सातसौ सधे सिखाये योधा हैं। इस सबके लिये मेरा स्थान अधिक सुपास वाला रहेगा। मेरे यहाँ रहने से आपकी और अन्य भारती व्यापारियों की भी रक्षा होजायगी।

अश्वतुंग—(*कन्दर्पकेतु से*) क्षमा कीजिएगा, हम लोग चन्द्रस्वामी के उद्यान में अपने डेरे डालेंगे और वहां से व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न करेंगे। जो भारती आत्म-रक्षा और शान्ति स्थापना के लिये हथियार उठा सकते हैं उनकी भर्ती करेंगे।

धारा—मैं भी युद्ध में भाग लूँगी—बड़ा अच्छा रहेगा।

(गौतमी धारा पर आँख घुमाती हुई ग्लानि के साथ समुद्र की ओर फिर देखने लगती है)

राजानन्द—उचित ही है, उचित ही है। शस्त्र से राष्ट्र की रक्षा होजाने पर ही शास्त्रों का अध्ययन चिन्तन और कविता का अनुशीलन हो सकता है, मैं भी तो नाग-द्वीप से शस्त्र-विद्या सीख आया हूं।

अश्वतुंग—वह द्वीप तो इस शास्त्र का विद्यापीठ ही है। (*चन्द्रस्वामी से*) यहां की स्थिति मेरी समझ में कुछ कुछ आगई है। यहां के भारती गण-तन्त्र अपने देश के बड़े गण-तन्त्रों के छोटे छोटे सांचों में ढले जान पड़ते हैं : तर्क कुतर्क, वाद विवाद, वितण्डावाद और बाल की खाल खींचने में समय का अपव्यय करते करते किसी भी सम्यक निर्णय पर न पहुँचकर परस्पर सिर फोड़ने के सहज सुलभ निश्चय पर पहुँच जाते होंगे। वारुणियों के अनेक वर्गों के अनेक स्वतन्त्र नायक

परस्पर उसी भांति निरन्तर लड़ते रहते होंगे जैसे हमारे यहाँ के छोटे छोटे राजा। इन सब के ऊपर कोई व्यापक प्रबल नियन्त्रक शक्ति नहीं है, इसलिए हिंसा का द्वार खुला रहता है। यदि भगवान शङ्कर की कृपा हुई तो शासन और व्यवस्था का उद्धार करूँगा।

गजमद—जब यह सब होजाय तब वारुण का नाम आर्यावर्त या आर्यप्रवास रख दीजिए।

अश्वतुङ्ग—क्या सूझ है तुम्हारी! पल्लवों ने अपने ही देश का नाम तो आर्यावर्त से भारतवर्ष कर दिया है और तुम चले वारुण नाम के सौन्दर्य का अपहरण करने। यदि समर्थ हुआ तो वारुण में भारतीय संस्कृति की श्रीवृद्धि अवश्य करूँगा जो वास्तविक आर्य धर्म है!

कन्दर्पकेत—भगवान की कृपा से आप समर्थ होंगे। आज नहीं तो फिर किसी दिन मेरा नम्र निमन्त्रण स्वीकार कीजियेगा।

गजमद—अवश्य। आपके उद्यान में भी मीठे फलों के बहुत पेड़ होंगे।

चन्द्रस्वामी—मेरे संघ के सब व्यापारी अपनी सारी सम्पत्ति आपकी योजना को सफल बनाने के हेतु समर्पित करदेंगे।

अश्वतुंग—धन्यवाद! अब मैं अपने साथियों को इकट्ठा करूँ।

धारा—मैं फूंकता हूं पुङ्गी। (कमर पर हाथ डालकर) अरे! पुङ्गी को तो कहीं डाल दिया है!!

अश्वतुंग—(मुस्कराकर) पुङ्गी नहीं देवी जी, इस बड़े द्वीप में काम बड़े बड़े रम्मट, धौंसे और तूर्य करेंगे। अभी तो थोड़ा सा काम मैं अपने कंठ से ही कर लूँगा।

(एक ढेर के पीछे से जय स्थविर आता है।)

जय—आश्चर्य है कि इस द्वीप में एक भी विहार नहीं! यहाँ के जन हिंसा में अनुरक्त हैं। इनको मुझे सुपथ पर लाना है।

चन्द्रस्वामी—आप भी अपने भिक्षुओं सहित मेरे निवास स्थान पर पधारें। राजकुमार और उनके साथी शासन की व्यवस्था करेंगे। आप वहां से धर्म का प्रचार करिये।

कन्दर्पकेतु—कृपा करके आप और भिक्षु मेरा आतिथ्य स्वीकार करें।

गौतमी—मैं भी प्रार्थना करती हूं।

जय—(चन्द्रस्वामी से) मैं कन्दर्पकेतु के उद्यान में भिक्षुओं सहित रहूँगा। गौतमी के कान और मन भगवान बुद्ध के उपदेशों के लिये बहुत आतुर हैं।

कन्दर्पकेतु और गौतमी—धन्यवाद।

(धारा दूसरी दिशा में देखती हुई मुस्करा रही है)

अश्वतुङ्ग—यहां से कितनी दूर जाना है ?

चन्द्रस्वामी—केवल दस कोस। इस निकटवर्ती पहाड़ी की ओट में रथ और वाहन मिलेंगे। यात्रा में बड़ा आनन्द आयगा। वारुणी नदी के के किनारे एक वारुण नामका छोटा सा पुर बस गया है। आँधी ने पोत को यहाँ न ढकेल दिया होता तो उसी नदी में होकर वारुण पहुँच जाते।

अश्वतुंग—मेरे और मेरे साथियों के लिये हमारे पदरथ ही पर्याप्त हैं। मैं अपने साथियों को तुरन्त इकट्ठा करता हूँ।

तीसरा दृश्य

[स्थान—वारुण में नगर का एक चौड़ा मार्ग। मार्ग के दोनों ओर छोटे बड़े भवन। समय—दिन।]

(दुर्बल देह, फटे कपड़े पहने, केश बिखेरे कुछ भारती और अनेक वारुण वासी आते हैं। वारुणवासी सर्वाकार नहीं है, परन्तु उनके चेहरों पर बाल कम हैं, नाक चिपकी और आँख कानों की ओर खिची हुई। वैसे इन भारतीयों और वारुणियों में कोई विशेष अन्तर नहीं अवगत होता है। भारती जन आगे हैं, वारुणी पीछे)

एक भारती—भारी अकाल पड़ गया है ! हम भूखों मर रहे हैं !!

वारुणी—हम भूखों मर रहे हैं ! हमारे बालबच्चे तड़प रहे हैं !!

भारती—अन्न को व्यापारियों ने छिपाकर रख लिया है। इन चोरों को दण्ड दो !!

वारुणी—हमको भूखों मर जाने से बचाओ !

(बहुत कोलाहल होता है। घरों से कुछ लोग निकल पड़ते हैं)

एक—शान्त रहो ! शान्त रहो !! प्रबन्ध हो रहा है !!!

भारती—क्या प्रबन्ध होरहा है ? चोरों और लुटेरों के नियन्त्रण में तुम सरीखे सम्पन्न लोगों की रक्षा हो गई परन्तु हमारा पेट तो नहीं भर सकता। *(अश्वतुङ्ग अपने कुछ सैनिकों के साथ आता है)*

अश्वतुंग—भाइयो ! अन्नसत्र खुलरहे हैं। वहा जाओ तुमको मिलेगा।

भारती—उन व्यापारियों का क्या हुआ जिनकी अन्न-चोरी के कारण सहस्रों मनुष्य काल के गाल मे चले गये ?

अश्वतुंग—नगर का गणतन्त्र उनको दण्ड देगा। धैर्य धरो।

भारती—उन्हीं व्यापारियों का गणतन्त्र है उनको दण्डित करेगा ?

अश्वतुंग—मेरा विश्वास करो।

भारती—आपका विश्वास हमको और वारुणियों को भी है। परन्तु हमारी सहायता अविलम्ब होनी चाहिये।

अश्वतुंग—हम लोग जो भारत मे कुछ ही महीने पहले आये, अपना कर्तव्य-कर्म दिखला चुके हैं। इसलिये भविष्य की उलझनों को सुलझाने के विषय में जो बात कर रहा हूं, उसका विश्वास करो।

वारुणी—हमको विश्वास है। हमको आर्यों का विश्वास है। हमको अगस्त्य की सन्तानों के वचन का भरोसा है।

भारती—हमको भी है। उन्हीं अगस्त्य की तो हम भी सन्तान हैं।

अश्वतुंग—तो भीड़भाड़ और झंझट मत करो। जैसी धर्माचरण की व्यवस्था हम लोगो ने दृढ़ करदी है, वैसी ही अन्न की तत्काल और भविष्य मे भी करेंगे। हम नहरें खोदेंगे जिससे अन्न का कभी भी अभाव नहीं होगा। अब जाओ। देखो, तुम लोगों के कोलाहल के कारण जनता ने अपने अपने द्वार बन्द कर रक्खे हैं। अन्नसत्रों पर जाओ।

(भीड़ 'महाराजकुमार अश्वतुङ्ग की जय' कहती हुई जाती है)

अश्वतुङ्ग—हम रीछों और वानरों की जय ! ये लोग भी क्या हैं !

एक सहकारी—(*हँसकर*) थे रीछ और वानर, अब तो ज्यों के त्यों ऋषि अगस्त की सन्तान हैं।

अश्वतुंग—इस अकाल का सामना कर लेने के उपरान्त अविलम्ब नहरें खोदने का काम करेंगे, तब होंगे अधिकारी उस महर्षि की सन्तान कहलाने के। न ! न !! तब भी नहीं। धर्म का राज्य स्थापित हो जाय, सुन्दर भारतीय कलाओं का प्रसार हो जाय और जनता सर्वथा सुखी रहने लगे, तब होंगे अधिकारी उस पदवी के। चलो अपने काम पर !

(सब जाते हैं)

चौथा दृश्य

[स्थान—वारुण द्वीप की उर्वरा भूमि का एक क्षेत्र। दूरी पर पर्वत और वन। पर्वतों की ओर से एक बड़ी नहर खुदती हुई इस क्षेत्र में आ गई है। अभी उसके पूरे होने में थोड़ी सी कसर है। अश्वतुङ्ग के साथी कुदाली फावड़े इत्यादि लिये हुये आते हैं। अश्वतुङ्ग उनके साथ नहीं है। समय—सन्ध्या के पूर्व।]

एक—महाराजकुमार कितना परिश्रम करते हैं ! थकते ही नहीं !!

दूसरा—हम लोग भी तो नहीं थकते। दिन भर काम करते करते हो गया है, खा पीकर और थोड़ा सा विश्राम करके फिर काम पर जुटने का दम रखते हैं।

एक—तुम्हीं क्या, सब की यही उमङ्ग है। भारतीयों की और वारुणियों की भी। जिस काम में बरसें लग जातीं, वह महीनों में पूरा होने को आ रहा है। सहस्त्रों जन चिपटे हुये हैं इस काम पर।

दूसरा—पर ये श्रेष्ठी व्यापारी नहीं छूते फावड़ा और कुदाली।

एक—स्वर्ण, चाँदी और अन्न तो देते हैं। श्रम और सम्पत्ति के सहयोग से ही तो राष्ट्र चलता है।

दूसरा—यह भाव तो तुमने महाराजकुमार के वाक्य में से उड़ाया है!

एक—महाराजकुमार से हँसी पाई तो विचार और वाक्य में क्यों न कहेंगे? हम सब ने उनके जीवन को अपना उदाहरण बनाया है और उनकी बातों को अपना सिद्धान्त। मन में ऐसी घुलमिल गई हैं मानो कहीं बाहर से आई ही न थीं।

दूसरा—वह कहते रहते हैं, श्रम से पूर्वजन्म के पापों का क्षय और इस जन्म के पुण्य का उदय होता है; श्रमजीवन का गौरव, शौर्य का जनक, सम्पत्ति की माता, स्वाभिमान का बीज, चमत्कार का पुरोहित और समाज का बल होता है, संपत्ति समाज का अस्थि-पञ्जर है और श्रम उसका रक्त मान्स; प्राण धर्म और संस्कृति।

एक—तुमने तो रट डाला है सारे का सारा!

दूसरा—रटा नहीं है आत्मसात कर लिया है।

एक—वह आ गये महाराजकुमार सामने से! (*अश्वतुंग आ रहा है*)

हमारे आदर्श!

(अश्वतुङ्ग कन्धे पर फावड़ा कुदाली लिये आता है। मिट्टी में उन सैनिकों की ही भांति सना हुआ है।)

अश्वतुङ्ग—कौन किसका आदर्श? तुम्हारा श्रम, त्याग और तुम्हारी कर्तव्य-निष्ठा मुझको अनुप्राणित करती रहती है। कहीं वह आदर्श तो सजीव नहीं है तुम्हारे मन के किसी कोने में जिसको मैंने महाचैत्य के विहार में अत्याचार द्वारा प्रकट किया था; चन्द्रस्वामी के घर लूटमारी करके, किसानों के खड़े खेत उजाड़ कर, प्रतिष्ठान की राज्यप्राप्ति के कपट-जाल को बनाकर खड़ा किया था; (*थके हुये चेहरे पर मुस्कान आती है*)

वे सब—नहीं है, वह नहीं है महाराजकुमार! कैसे हो सकता है?

अश्वतुंग—धन्यवाद! (*हँसता है और वे सब हँस पड़ते हैं*) इस नहर की पूर्ति के लिये थोड़ा सा ही समय और 'चाहिये। एक जो

खुद चुकी है उसका, और इसका, जैसे ही पूरी हुई, नामकरण किया जावेगा।

एक—एक का नाम अश्वतुङ्गी, दूसरी का नाम धारा।

अश्वतुंग—नहीं। अपने यहां मनुष्य के नाम को अमरत्व देने की प्रथा नहीं है, परम्परा कार्य को अमरता देने की है। अपने यहाँ की पवित्र नदियों का नाम क्यों न दो? एक का नाम गंगा दूसरा का नाम कृष्णा। गंगा पर काशी है। कृष्णा पर धान्यकटक

सब—बहुत अच्छा रहेगा। गंगा और कृष्णा की जय!

अश्वतुंग—वारुण में कितनी प्रचुर संख्या में नदियां हैं! कैसी उर्वरा भूमि!! परन्तु उनका कितना थोड़ा उपयोग होता है!!! इनके उपयोग को बढ़ायँगे।

सब—बढ़ायँगे!!!

अश्वतुंग—(*उत्साह के साथ*) विद्या, धन तथा शक्ति मनुष्य जीवन की आवश्यकतायें हैं। सब कोई इनके अर्जन का प्रयत्न करते हैं, परन्तु मानव की महत्ता इन तीनों के अर्जन और वर्धन में ही नहीं है, किन्तु उनका समुचित उपयोग करने में है। विद्या, धन और सम्पत्ति का उपयोग मानव कैसे करता है यही ऊँची नीची संस्कृति का मापदंड है। मैंने तुमसे सीखा है यह।

सब—महाराजकुमार की जय!

अश्वतुंग—और तुमने मुझसे यह सीखा है!!

(*वे हँस पड़ते हैं*)

अश्वतुंग—तुम सबने बहुत परिश्रम किया है। अब चलकर भोजन और विश्राम करो।

(*सब जाते हैं*)

पाँचवां दृश्य

[स्थान—वारुण द्वीप में वारुणी नदी के एक तटवर्ती उद्यान में कुछ घर। घर एक क्रम में बने हुये हैं। काठ के हैं और फूस के

मोटे पत्तों से छाये हुये हैं। काठ के होते हुये भी उनका आकार-प्रकार सुन्दर है। घरों के ठाठ में बौद्ध विहार का अनुकरण किया गया है। जय, गौतमी और कन्दर्पकेतु उद्यान में आते हैं। समय—सन्ध्या।]

गौतमी—गुरुवर, आप उस नरक द्वीप में जाने की अब भी सोचते हैं!

जय—स्वर्ग और नरक सब स्थलों में हैं। हमारा कार्य नरक को स्वर्ग बनाने का है। अश्वतुङ्ग ने ठीक कहा था कि पूर्व जन्म के कर्म और परस्थिति-वश नाग द्वीप के निवासी मनुष्य-भक्षी हुये। उनका सुधार मेरा ध्येय है।

गौतमी—अश्वतुङ्ग शैव है इस कारण वैसी बात कहता था।

कन्दर्पकेतु—शैव है इसी लिये तो उस मनुष्य-भक्षिणी के साथ विवाह करने जारहा है। इन दोनों को ही सुधारिये, शोधिये न पहले।

जय—भगवान ने मनुष्य-मात्र को तीन वर्गों में विभक्त किया है, 'एक वर्ग वह है जिसको सुधारने की आवश्यकता नहीं। यह वर्ग ज्ञानियों का है। दूसरा वर्ग उन मनुष्यों का है जिनका सुधार हो ही नहीं सकता। यह वर्ग हठ धर्मियों और अज्ञानियों का है जो अहङ्कार के अभिमान में किसी की भी नहीं सुनना समझना चाहते, इस वर्ग ने निश्चत पोखरी में गलित होते रहने का प्रण सा कर लिया है। तीसरा वर्ग उन मनुष्यों का है जिनकी प्रज्ञा चंचल और अस्थिर है। ये सुधारे जा सकते है। भगवान ने इसी वर्ग पर ध्यान को केन्द्रित करने का आदेश दिया है।

गौतमी—इन तीन में से मैं किस वर्ग में आती हूँ आचार्य?

जय--(*मुस्कराकर*) यह पूछना व्यर्थ है। तुम किसी दिन हम लोगों की दूसरी संघमित्रा बनोगी इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु पहले तो तुमको उपसम्पदा ग्रहण करनी है बेटी।

गौतमी—संघमित्रा धर्म प्रचार के लिये सिंहल को गई थी परन्तु मैं नागद्वीप में नहीं जाऊँगी। मुझको तो उसका नाम ही काट सा खाता है।

जय—मन में ऐसे विकारों को नहीं आने देना चाहिये। विकारों का निवारण हमारा पहला प्रयत्न होना चाहिये। इन तीन वर्षों में तुमने क्या कुछ भी नहीं सीखा ?

कंदर्पकेतु—वास्तव में बात यह है कि इस भोली कन्या ने थोड़े दिन पूर्व ही दीक्षा लेने का पक्का प्रण किया है। पुरानी बातों का विस्मरण धीरे धीरे हो जायगा।

गौतमी—उस राक्षसी ने उस दिन मेरा गला घोंट दिया होता; आपने रक्षा कर दी, नहीं मुझको मार डालती। अब मुझको सब स्मरण हो रहा है कि वह अश्वतुङ्ग डायन धारा को भड़का कर बाहर चला गया था, फिर अच्छा बनने के लिये कक्ष में आ गया।

कन्दर्पकेतु—जाने भी दो उन बातों को, परन्तु इसमें कोई संशय नहीं कि अश्वतुङ्ग बहुत हिन्सी है। मैंने और मेरी श्रेणी के व्यापारियों ने हर प्रकार से उसकी सहायता की, अन्नसत्र खोले और नहर के खुदवाने में स्वर्ण और चांदी दी, फिर भी अकाल में अन्न के छिपाने का मेरे ऊपर आरोप किया! मेरी श्रेणी वाले मेरे पक्ष में न होते तो कितना अन्याय न हो जाता! वह चन्द्रस्वामी की सीठी पर चढ़ा हुआ है। मैं श्रेणियों का संगठन करके अबकी बार चन्द्रस्वामी को देखूँगा। सम्पत्ति और व्यापार के गर्व में डूबा जा रहा है। इसको निकम्मा करके रहूंगा।

जय—परन्तु उसको बल अश्वतुङ्ग का है जिसके हाथ में अब बहुत बड़ी सेना हो गई है। सावधान, कन्दर्पकेतु!

कन्दर्पकेतु—सेना का व्ययभार तो व्यापार-श्रेणियों पर है। हमलोग व्यय नहीं देंगे तो सेना अपने घर बैठ जायगी।

जय—विवेक से काम लेना चाहिये।

गौतमी—उस कंटाइन धारा का कचर कचर करना मुझको नहीं सुहाता; वह यदि यहाँ से अपने द्वीप को चली जाय तो अश्वतुङ्ग सुधर सकता है।

जय—मैं वर्षों से नंगे पैर चलता हूं, प्रवर्ज्या से गाँट बाँधली है, मनुष्य सुधार की प्रतिज्ञा किये बैठा हूँ इसलिये आशा करता हूँ कि अश्वतुङ्ग और धारा को छोड़कर उन भोले भाले अनजान सैनिकों को धर्म मे दीक्षित कर लूंगा। इस प्रकार अश्वतुङ्ग विषहीन सर्प सदृश हो जायगा।

गौतमी—तब तो आप इसी द्वीप में प्रवास करेंगे। इस विस्तृत वारुण देश में भी तो इधर उधर जगलों में बर्बर जातियों के अनेक वर्ग हैं। इनके सुधारने में प्रवृत्त रहिये, नागद्वीप में जाने का विचार त्याग दीजिये।

जय—विचार को तो नहीं त्याग सकता, परस्थिति-वश चाहे जाने न पाऊँ।

गौतमी—धारा अब नृत्यगान सीख रही है! जीवन भर में क्या कभी भी उसको विवेक आयगा?

जय—तुमने अपने को सुधारने का निश्चय कर लिया है। भिक्षुणी बनकर उसको भी सुधार लोगी।

गौतमी—मैं आपके साथ यहां के वनपर्वतों का पर्यटन करूँगी।

कन्दर्पकेतु—बेटी, यहां के वनपर्वतों में सिंह, व्याघ्र, हाथी, गेंडे, अरने और न जानें किस किस प्रकार के हिंस्र पशु हैं। तुम्हारा तो विहार में ही रहना अच्छा होगा।

जय—नंगे पैर चलने वाला किसी से नहीं डरता। देखा जायगा, अभी तो अवसर बहुत दूर है। बातों बातों में कहीं से कहीं भटक गये। वास्तव में चंचल वृत्ति को शांत करना मुख्य कर्तव्य है।

गौतमी—एक प्रश्न कर लूं, फिर धर्म का उपदेश दीजिये सुना है कि इस द्वीप में स्वर्ण और हीरों की खानें हैं। क्या यह सत्य है?

जय—सत्य तो है, परन्तु अपने लिये व्यर्थ और अनर्गल सत्य है।

सत्य वह है जो मरने के समय काम आवे। स्वर्ण और हीरों का सम्बन्ध देह और व्यापार से है, मृत्यु से उनका कोई सम्बन्ध नहीं।

गौतमी—जान गई!

जय—लोभ और मोह के घातों प्रतिघातों से मन चंचल हो जाता है। मन की चचलता को शान्त करने के लिये प्रत्येक प्रकार के मोह का त्याग कर देना चाहिये। परिग्रह, मत्सर, द्वेष, क्रोध इन सबका दमन करना परम आवश्यक है। भगवान अविलोकितेश्वर की मूर्ति जिस शान्त का प्रतीक है, उसकी आराधना करना चाहिये। उस मूर्ति का अनवरत ध्यान करने से मन में शान्ति बसने लगती है। कार्यकारण के अटूट सम्बन्ध का अनुसन्धान मन करने लगता है और विवेक का उदय हो जाता है। इसी आशा पर तुमको दीक्षा दे रहा हूँ। मानव उन्नति के मार्ग में चूकता है, गिरता है, परन्तु धर्म उसको उठ खड़े होने में निरन्तर सहायक होता है।

गौतमी—इन अमृतकणों को अपने भीतर सुरक्षित रक्खूँगी। मुझको आश्चर्य है कि धारा के ध्यान में यह सीधी सी बात क्यों नहीं चढ़ती। आपने कई बार समझाया, परन्तु उस दुर्बुद्धि की समझ में न आया, न आया।

कन्दर्पकेतु—अश्वतुङ्ग चन्द्रस्वामी से एक शैव मन्दिर बनवा रहा है।

जय—विहार भी बन जायगा। हमको स्थितप्रज्ञ रहना चाहिये।

गौतमी—किसी दिन अश्वतुङ्ग यहाँ का राजा न बन बैठे, नहीं तो वह विहार की दुर्गति करेगा, जैसी नागार्जुनी कोंडा में की थी।

जय—अब उसमें बहुत परिवर्तन हो गया है। वह अभिमानी नहीं है और न धर्मान्ध, यह बड़ी बात है।

गौतमी—परन्तु धारा तो है। क्या अश्वतुङ्ग सचमुच राजा बन जायगा!

कन्दर्पकेतु—अरी नहीं! मैं जानता हूँ उसको राज्यलिप्सा नहीं है। दोष उस कात्यायनी धारा का है। उसी ने अश्वतुङ्ग को द्वीप के दूषित

मन्त्र द्वारा उलट-पलट डाला है और मनुष्यों के उस वर्ग में पटक दिया है जो किसी प्रकार भी नहीं सुधारा जा सकता। कितना अटपटा बकता है।

जय—अब कीर्तन का समय होगया। चलो।

गौतमी—आज मैंने आपसे बहुत पाया, चलिये।

जय—(*जाते जाते*) जो सुधार के अयोग्य हैं, उनके लिये भी किसी सुधार-क्रम का सृजन सोचा जायगा। सुधार योग्यों को अविलम्ब हाथ में लूँगा, फिर अयोग्यों को भी देखूँगा।

(*सब जाते हैं*)

छटवां दृश्य

[स्थान—वारुणी नदी के कूल पर वारुण नाम का छोटा सा पुर बस गया है। यह नदी इतनी चौड़ी और गहरी है कि समुद्र से दूर, द्वीप के भीतर, बड़े बड़े यान तक आ सकते हैं। यानों के ठहरने के लिये एक नौकाश्रय प्राकृतिक है, दूसरा बनाया जा रहा है। नौकाश्रय से कुछ दूरी पर एक छोटा प्रासाद। प्रासाद दो खंडों का है। इसकी लम्बाई और चौड़ाई मझोले आकार की है। प्रासाद हरे भरे उद्यान के बीच में है। धारा और अश्वतुङ्ग टहलते हुये आते हैं। समय—प्रभात काल]

धारा—नदी पर प्रभात की रेखाँयें वैसी ही बिखर रही है जैसी पूर्व दिशा में। ऊषा ने पीतपट फहरा दिये हैं और वारुणी नदी ने सूर्य की प्रार्थना आरम्भ करदी है।

अश्वतुङ्ग—पेट में कोई विकार न हो और मेरुदण्ड में दोष न हो तो प्रभात काल से लेकर और रात्रि में जब तक सो न जायँ सब कालों में कुछ न कुछ प्रभावक रहता है।

धारा—आपके पेट में विकार और मेरुदण्ड में क्या कोई पीड़ा है?

अश्वतुंग—अंशतः है। जब से सुना कि रामचन्द्र की सेना के नायक या उपनायक को वारुण के भारतीं और आग्नेक राजा बनाने जा रहे हैं तब से हँसी भूलने की स्थिति आरही हैं। ब्राह्मणों ने मुहूर्त शोध लिया है। जामवन्त से हनुमान या सुग्रीव, वानर से मनुष्य और मनुष्य से राजा!

धारा—ओह! मैं समझी कि वास्तव में कुपच है और मेरूदण्ड में पीड़ा। मुझको तो बड़ा हर्ष है इस समाचार से।

अश्वतुंग—मुझको तो परम हर्ष उस दूसरे मुहूर्त पर होगा। यह निश्चय है कि मुहूर्त पूर्णिमा के दिन का न होगा। नागद्वीप में पूर्णिमा का मुहूर्त टल गया सो टल ही गया, परन्तु यह मुहूर्त अटल जान पड़ता है।

धारा—(*दूसरी ओर देखती हुई, मुस्कराकर*) यह दूसरा मुहूर्त किस बात का है?

अश्वतुङ्ग—इधर देखिये मेरी ओर।

धारा—नहीं देखूँगी। आप फिर किसी कुपच की बात कह उठेंगे।

अश्वतुंग—जिसने तीन वर्ष फलाहार और उपवास किये उसको किसी प्रकार का कुपच नहीं हो सकता। देखिये इधर।

धारा—(*मुस्कराती हुई*) कहिये।

अश्वतुंग—एक देवी के साथ मेरा विवाह होने वाला है जिसका नाम धारा है। रहेगा स्मरण?

धारा—(*हँसकर*) इस छोटी सी बात का स्मरण कैसे रह सकेगा!

अश्वतुंग—बतलाऊँ कैसे रहेगा?

धारा--(*हटकर हँसती हुई*) नहीं, नहीं दूर से बात करिये।

अश्वतुंग—तुम्हारी सुन्दरता, शक्ति और बुद्धि में एक दूसरे मे होड़ सी लगी रहती है।

धारा—सदा आपके मन में ऐसी ही बनी रहूं तब तो।

अश्वतुंग—शरीर और मन के सन्तुलन का और संयम द्वारा समन्वय का जीवन, दम्पति को, अन्त अन्त तक सुन्दर, सशक्त और प्रबुद्ध

बनाये रखते हैं। आप में उस सन्तुलन और समन्वय की मात्रा पर्याप्त रूप में है।

धारा—मेरी कामना है कि गौतमी भी सुखी रहे। मैंने उसके साथ उस दिन जो क्रूर बर्ताव किया था उसकी हृदय से क्षमा मांगी, परन्तु गौतमी के मन में मेरा दुर्व्यवहार ऐसा भिद गया कि उसने क्षमा नहीं दी।

अश्वतुङ्ग—विहार में पहुँच गई है, अब भूल गई होगी, जैसे मुझको जय स्थविर ने क्षमा कर दिया। उसके मुख पर शान्ति और सौम्यता है, हँसने लगे तो सौन्दर्य भी छा जायगा।

धारा—परन्तु भिक्षुओं को हँसने हँसाने से क्या प्रयोजन ?

अश्वतुंग—है तो सब कुछ; परन्तु जीवन को क्षणिक और अस्थिर मानने के कारण, मृत्यु को अधिक महत्व देते हैं। हँसने को शक्ति का अपव्यय समझकर हेय समझते हैं। कहीं यदि इनको सच्ची हँसी आने लगे तो ये जीवन और मृत्यु, दोनों की, सम्यक साधना करने लगें। ये सोचते हैं कि दमन से मन के दोष भाग जाते हैं, मेरा विश्वास है कि मनके दोषों का पाचक और रेचक हास है, हो हास का लक्ष्य हँसने वाला स्वयं। यदि दूसरे इसके लक्ष्य बनाये गये तो उससे नदी किनारे खड़े होकर रो लेना श्रेयस्कर है।

धारा—(मुस्कराकर) साधु ! साधु !!

अश्वतुंग—तभी मैंने अपने कुरच और मेरुदण्ड की पीड़ा की बात कही था। उपदेश दे उठा न मैं ! वास्तव में बात यह है कि बाल्यकाल के देखे और सीखे हुये अभ्यासों को कैसे त्याग दूँ ? हमारे साहित्य ने हँसने का त्याग कर दिया है। रामायण और महाभारत के जन हँसते हैं, ये महाकाव्य हँसते हैं, हँसाते हैं, परन्तु मैंने इनके अतिरिक्त भी कुछ और पढ़ा और रामायण, महाभारत की देन को भूल गया। अब जो कुछ गजमद और आपने दिया है कहीं यह राज्य-पद मुझसे अपहरण न करले।

धारा—मुझको आशा है कि आप इस द्वीप को भारत की प्राचीन संस्कृति प्रदान करेंगे।

अश्वतुङ्ग—ठीक कहा देवी। रामायण और महाभारत इनके जीवन को पराक्रम और मरण को चमत्कार देंगी। वारुण द्वीप वासियों को खेलकूद बहुत रुचिकर हैं ही, रामायण और महाभारत के प्रसङ्गों के अभिनय इनको सुधार कर ऊँचे स्तर पर ले जायेंगे। उन प्रसङ्गों का अभिनय करते करते ये अपने को कदाचित उन्हीं का समझने लगेंगे और वैसे ही पुरुषार्थी, निर्भीक, सदाचारी और धर्मनिष्ठ भी होने का प्रयत्न करेंगे।

धारा—इस कार्य को आप मेरे हाथ में सौंप देना। नृत्य तो मैं सीख ही रहा हूँ। रामायण और महाभारत के प्रसङ्गों का अभिनय भी सीख लूँगी। शासन-व्यवस्था और जनपद की अन्न समस्या के साथ ही जीवन को सुसंस्कृत बनाने का प्रश्न भी उतने ही महत्व का है। कला पाशविकता को गलाने वाली, संस्कृति की नाड़ी, विकारों की सुखमर्दिनी, अध्यात्म की महायोगिनी, जीवन का रस, सभ्यता का प्राण और नीति की सहचरी है।

अश्वतुंग—और उसका अतिरेक विलास, मूर्खता का वाहन। समीकरण और सन्तुलन रहना चाहिये।

धारा—नहीं भूलूँगी।

अश्वतुंग—सूर्योदय हो गया है। हम दोनों पूर्व की ओर उन्मुख हैं। वारुणी ऊर्मियों का अर्घ्य देकर सूर्य की प्रार्थना कर रही है। आप नृत्य द्वारा उस प्रार्थना को सार्थक कीजिये।

धारा—हाँ, अपने महाराज की आज्ञा का पालन करना ही पड़ेगा।

(धारा का नृत्य। उधर सूर्योदय होता आरहा है।)

धारा—(*नृत्य की समाप्ति पर*) अब तो कुपच नहीं रहा? और न मेरु दण्ड की पीड़ा?

अश्वतुङ्ग—फिर न होवे तब है। आशा तो है कि नहीं होने दूँगा। यदि भूल गया कि अश्वतुङ्ग अश्वपुच्छ भी हो गया था तो उसकी आशंका है।

धारा—वारुण तो आपको दूसरे नाम से पुकारेगा, आप अपने मन में चाहे जिस नाम को पोषित करते रहे।

अश्वतुङ्ग—किस नाम से ?

धारा—आपके पूर्व पुरुषों के नाम से। अश्ववर्म्मा के नाम से। मल्लवों की उपाधि के नाम से।

अश्वतुंग—हा तुङ्ग या पुच्छ कुछ न रहा ! अकेला, सीधा, अश्व-मात्र। आपको रुचेगा ?

धारा—अश्ववर्म्मा, धर्म महाराजाधिराज अश्ववर्म्मा।

अश्वतुङ्ग—अब चलो, दोनों मुहूर्तों का समन्वय एक ही दिन कर डाले।

धारा—(*मुस्कराकर*) हूँ।

(वे दोनों जाते हैं)

सातवां दृश्य

[स्थान—वारुण पुर में एक विशाल वितान-मण्डप। यह मण्डप लकड़ियो के लट्ठों, बाँसो और लता बेलो से बना कर सजाया गया है। मण्डप मे आसनो पर भारती और वारुणीजन बिना किसी भेदभाव के बैठे हुये है। मण्डप के मध्य में मंच के ऊपर एक सिंहासन रक्खा है। एक प्रमुख स्थान में जय, कन्दर्पकेतु, चन्द्र-स्वामी और गजमद बैठे हैं। सिंहासन के नीचे, निकट ही महादंड-नायक इत्यादि पदाधिकारी। एक ओर वारुणी नर नारी अपने यहाँ का नृत्य करने के लिये सन्नद्ध हैं। मडप के द्वार पर एक पट्टी पर बड़े बड़े अक्षरों में लिखा हुआ है:—

"सम्यक प्रजा पालन मात्राधिगत राज्य प्रयोजनस्य"

(राजसी वेश भूषा में धारा और अश्वतुङ्ग आते हैं। मंडप में बैठे जन आदरपूर्वक स्वागत करते हैं। भारती और वारुणी प्रमुख उन दोनों को सिंहासन के निकट ले जाते हैं। कुछ ब्राह्मण

मङ्गलोच्चार करते हुये आते हैं और अश्वतुंग का अभिषेक करते हैं। 'धर्म महाराजाधिराज अश्ववर्म्मा की जय' का घोष होता है। इस घोष के बीच में वे दोनों सिंहासन पर आसीन हो जाते हैं। 'महारानी धारा देवी की जय' का घोष होता है। वे दोनों खड़े हो कर उपस्थित जनता को नतमस्तक प्रणाम करते हैं।)

अश्वतुंग—भारती और वारुणी जनता ने मुझको अपना राजा स्वीकार करके वास्तव में अपना नायक चुना है। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि धर्म के अनुसार आचरण करूँगा और जनपद की रक्षा और उन्नति के हेतु अपने प्राण तक भेट कर दूँगा। इस द्वीप में के गणतन्त्र, आद्यकों के कुलतन्त्र और एकतन्त्र सब चलने दिये जायँगे, परन्तु अव्यवस्था कहीं भी नहीं होने दी जावेगी। भारत ने अपनी प्रसिद्ध सन्तान अगस्त ऋषि द्वारा अपनी संस्कृति का संदेश पूर्व की ओर भेजा। समुद्र को प्राण-धन विनाश-शंका-स्थान कहा गया है, परन्तु अगस्त ऋषि ने समुद्र संकटों की अवहेलना की और अपने देश की परम्परा का पालन किया। उस परम्परा और उत्तराधिकार का दायित्व अब आप सब के ऊपर है।

एक ब्राह्मण—उसका निर्वाह किया जायगा।

जय—विद्या का उपयोग विवाद के लिये आसुरी है, धन का उपयोग वासनाओं की तृप्ति के लिये और शक्ति का उपयोग पर पीड़न के लिये आसुरी है।

अश्वतुंग—नरबलि और पशु-बलि का सर्वथा निषेध किया जाता है। व्यष्टि और समष्टि, व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध को ध्यान में रख कर सब कोई चले। सब को अपने अपने धर्म के मानने की स्वतन्त्रता रहेगी, साथ ही, सबको अपने समाज और राष्ट्र की रक्षा और प्रतिष्ठा के लिये अपने को होम देने के लिये उद्यत रहना पड़ेगा।

चन्द्रस्वामी—मैं इस समारोह की स्मृति में वारुणी नदी के तट पर एक विशाल शैव मन्दिर बनवाऊँगा जिसमें वाकाटक वास्तु-परम्परा को

साकार कर दिया जायेगा—उभरा हुआ शिखिर, जालीदार खिड़कियां, गोख वाले बारजे, खजूरी खम्बे, मकर तोरण, द्वार की एक ओर गङ्गा की और दूसरी ओर यमुना की मूर्ति, मन्दिर चौकोर, नन्दी तथा चक्र और—

गजमद—और नाम वप्रकेश्वर महादेव का मन्दिर, बिखरी हुई जटाओं वाले नन्दीश्वर महादेव का मन्दिर।

(धारा मुस्कराती है। सहसा उसका हाथ अपने केशों पर जाता है जो बधे हुये हैं।)

कन्दर्पकेतु—मैं एक विशाल बौद्ध मन्दिर बनवाऊँगा।

अश्वतुंग—एवमस्तु। विवेक को साकार कीजिये। बहुत अच्छा है।

गजमद—अब त्याग और तपस्या करने वालों को कुछ मिलना चाहिये।

जय—त्याग तपस्याओं के लिये पुरस्कारों का बाँट! त्याग तपस्याओं के लिये माप, मापदण्ड, तखड़ी-बाँट नहीं हैं, परन्तु पुरस्कारों के लिये बना लिये गये हैं! आश्चर्य है!! कदाचित इसी कारण त्याग तपस्या का दम्भ करने वाले पुरस्कारों के लोभी, अहङ्कार के मारे, अपने त्याग तपस्या की सीमा को न जान पाकर द्वेषवश परस्पर लड़ बैठते हैं। पुरस्कार प्रदान की यह प्रथा निषिद्ध करदी जाना चाहिये।

अश्वतुङ्ग—(*मुस्कराकर*) आप ठीक कहते हैं, परन्तु गजमद जो दूसरों के विषय में नहीं कह रहे हैं; उनका ध्यान अपने ही सम्बन्ध में अधिक सतर्क है। इनको महाकवि की उपाधि दे दी जाय तो क्या कोई हानि होगी?

गजमद—(*प्रसन्नता के साथ, धीमे स्वर में*) महाकवि गजमद! महाकवि गजमद!!

(लोग हँस पड़ते हैं।)

महादण्डनायक—मेरा एक अनुरोध है; इसी सभामण्डप के स्थान पर, इस शुभ अवसर को चिरस्मरणीय बनाने और सब लोगों का कर्तव्य की ओर निरन्तर ध्यान आकृष्ट करते रहने के लिये एक विशाल

मन्दिर बनाया जाना चाहिये जिसमें हमारे धर्ममहाराजाधिराज अश्ववर्म्मा की हँसती हुई मूर्ति प्रतिष्ठित की जावे *(अश्ववर्म्मा चकित होता है, जय मुँह लटका कर चिन्तामग्न हो जाता है और गजमद झुक झुककर हामी का सिर हिलाता है। अन्य जन समझने के प्रयास में हो जाते हैं)* और जिसके एक खम्भे पर धर्ममहाराजाधिराज आत्मसयम सम्बन्धी पराक्रमों को उत्कीर्ण करा दिया जावे।

(धारा मुस्कराती है)

अश्ववर्म्मा—मैं देश से क्यों निकाला गया, यह भी न ! *(गम्भीर होकर)* मन्दिर के बनवाने वाले अपने कर्तव्यों का बोझ और जीवन का दायित्व मन्दिर पर डालकर हलके हो जाते हैं और उन्नति तथा विकास की प्रगति को क्षीण कर देते हैं। पहले के ही मन्दिर क्या कम हैं कर्तव्य का स्मरण दिलाने के लिये ? यदि आप लोगों को अपना कर्तव्य भुलाना है पथ-भ्रष्ट होना है और मेरी हँसी को सदा के लिये नष्ट कर देना है तो बनाइये मूर्ति वाला मन्दिर।

(कुछ तीव्र दृष्टि से देखता है। गजमद सन्नाटे में है, जय प्रसन्न। वारुणवासी यह सब निरर्थक समझकर अपने नृत्य के लिये स्पष्ट सङ्केत करते हैं। धारा उन लोगों की दिशा में देखने लगती है)

अश्वतंग—आप सबके सहयोग से शासन व्यवस्था और भोजन-वस्त्रादि की सुलभता के साथ साथ संस्कृति, कला तथा जन-मनोरंजन के साधनों का पूरा आयोजन करूँगा। तभी अपने जीवन को सफल समझूँगा। बौद्ध-विहारों और ब्राह्मणों के विद्यामठों को पूरी सहायता दी जावेगी जिसमें वे धर्म, शिक्षा और संस्कृति के प्रचार प्रयत्नों को निश्चिन्त होकर पूरा समय दे सकें। भारत संतति के ऊपर एक अतिरिक्त उत्तर-दायित्व है। वे अपने देश में पूर्व की ओर सम्पत्ति अपहरण या जनपीड़न के लिये नहीं आये हैं। भारती संस्कृति में जो कुछ उत्कृष्ट और सर्वसुन्दर

है उसके वितरण निमित्त आये हैं. महर्षि अगस्त की परम्परा को पुष्ट करने के लिये। अगस्त ऋषि की जय ! भारत की जय !!

(सब जयघोष करते हैं। अश्वतुङ्ग और धारा सिंहासन पर बैठ जाते हैं। वारुणी नरनारियों का नृत्य होता रहता है)

यवनिका

(इति)

श्री वृन्दावनलाल वर्मा—साहित्य ।

प्रकाशित उपन्यास

लक्ष्मीबाई (तृ० सं०) ६)
कचनार ४॥)
मुसाहिबजू १॥।)
अचल मेरा कोई ३॥।)
मृगनयनी ५)
गढ़कुण्डार ४॥)
विराटा की पद्मिनी ५)
कुण्डलीचक्र २)
कभी न कभी २॥)
प्रेम की भेंट १॥)
प्रत्यागत १।)
हृदय की हिलोर १)

नाटक

राखी की लाज १।)
झाँसी की रानी २)
काश्मीर का कांटा १)
फूलों की बोली १।)
बाँस की फाँस १)
लो भाई पञ्चो लो ॥।)
पीले हाथ ॥।)
हंस–मयूर २।)

प्रेस में

उपन्यास

माधव जी सिंधिया
सत्रह सौ उन्तीस
आनन्दघन
राणा सांगा
टूटे कांटे

कहानी

हर सिंगार
दबे पाँव
कलाकार का दण्ड

नाटक

मङ्गल मोहन
कब तक
नीलकण्ठ
सगुन
पायल
जहांदारशाह

हमारा आगामी प्रकाशन—

"बीरबल"

अद्वितीत रोचक, कलात्मक और ऐतिहासिक नाटक

मयूर–प्रकाशन, मानिक चौक, झांसी ।